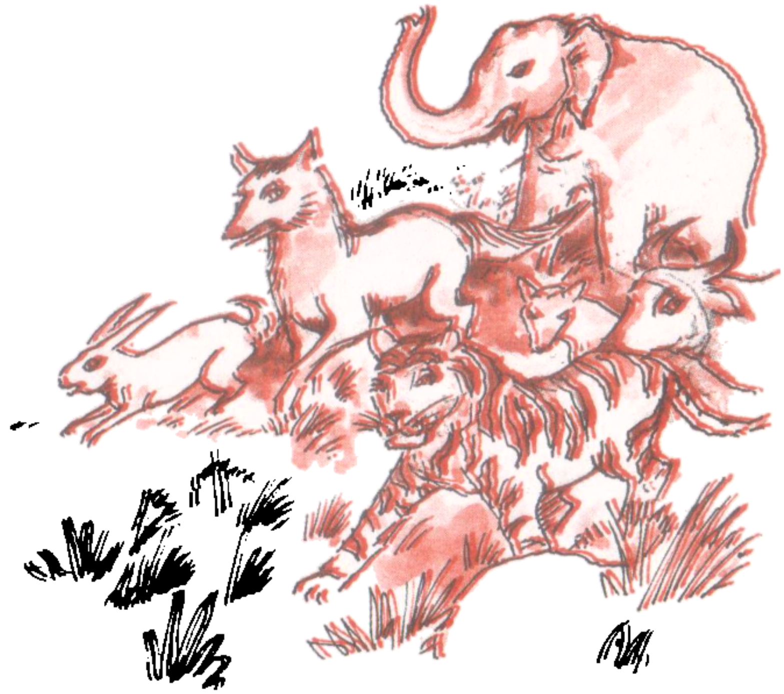
सूखा गुलाब

शिवानी



सूखा गुलाब

शिवानी



राजपाल

मूल्य : तीस रुपये (Rs. 30.00)

ISBN : 978-81-7028-519-9
SUKHA GULAB (Story) by Shivani
राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110 006
website : www.rajpalpublishing.com
e-mail : mail@rajpalpublishing.com

क्रम

मूलन

कभी-कभी ज्योतिषी भी कैसा अनर्थ कर बेठते हैं! बेचारी मूलन के नन्हे जीवन में भी ज्योतिषी की ऐसी ही भविष्यवाणी ने विष घोल दिया था।

सेठ गुलाबशाह के कोई सन्तान नहीं थी। सन्तान के लिए उन्होंने पूरे भारत की परिक्रमा की। सब मनौतियाँ करके हार गए। फिर ओने-कोने के एक-एक मज़ार को ढूँढ़-ढूँढ़कर डोरियाँ बाँधने लगे। जब उनसे भी कोई आशा नहीं बँधी, तो उन्होंने अपनी पत्नी सहित जागेश्वर के मन्दिर में, एक पैर पर खड़े हो, हाथ में दीपक लेकर अखण्ड जागरण का कठोर व्रत लिया। वह सोचते, 'आखिर कब तक नहीं पसीजेंगे भगवान!'

इस बार भोले शंकर ने सचमुच ही उनकी सुध ली। सिर के बाल जब खिचड़ी हो गए, तब उनके घर पुत्री का जन्म हुआ। लड़की क्या थी, गुलाब का फूल! गोरा रंग, सुतवाँ नाक, आम की फाँक-सी सुन्दर आँखें और काले भंवर केश। गोरी-उजली शाहनी धरमावती बेटी को देखकर पति से कहती, "तुम पर गई है।" और रोहिल्ला पठान-सा शाह कहता, "तुम पर!"

जिस पर भी गई हो, लड़की का भविष्य उज्ज्वल था। ऐसी धूम-धाम से छठी हुई कि गाँव-भर को खस्ता, मोमन डली कचौड़ियाँ

और मेवे की खीर दावत में खाने को मिली। दूर-दूर से भिखारी आते। उन्हें भी शाह से मुँह माँगी भीख मिलती। वे आशीर्वाद देते, लौट जाते। दरवाज़े पर कुमाऊँ के रणबांके छोलिया राजपूत नगाड़े-तुतुरी के साथ अपना अनोखा छोलिया नृत्य कर रहे थे। उधर दास-दासियों की फरमाइशों का अन्त नहीं था। कोई कहती, "मैं तो दस तोले की नथ लूँगी शाह जी!" कोई कहती, "मुझे चन्द्रहार बनवाना होगा शाह जी!"

उधर शाह जी अपनी सफ़ेद घनी मूँछों ही मूँछों में मुस्कराते। चाँदी के थालों में ढाल से बड़े-बड़े बताशे लुटाते। अपनी उजली हँसी का दर्पण चमकाते कहते, "अरी, जो मन में आए बनवा लेना। बावलियो, मैंने कब मना किया है।"

लोग आपस में कानाफूसी करते, "निश्चय ही किसी देवी ने जन्म लिया है। नहीं तो यह खूसट कंजूस सेठ, जिसने कभी कानी कौड़ी भी भिखारी को नहीं दी, ऐसे अपना खज़ाना लुटा देता?"

मगर भाग्य का लिखा कौन जानता है? ज्योतिषी के अनुसार तो वह लड़की शाह के लिए देवी नहीं, दानवी के रूप में ही जन्मी थी।

"शाह जी, भला चाहते हो तो पलटकर बेटी का मुँह मत देखना। अभुक्त मूल में जन्मी है। वह भी कार्तिक के मूल में। इससे तो तुम्हारी शाहनी निपूती ही भली थी।" ज्योतिषी ने शाह से कहा।

शाह ने पण्डित मोतीराम के दोनों पैर पकड़ लिए, "गुरु, कोई शान्ति, कोई अनुष्ठान बताइए। आप जो भी कहेंगे मैं करूँगा। पचपन साल की उम्र में तो बेटी का मुँह देखा है। आँगन में खुशी की फसल की बाली झूमी है और आप कह रहे हैं, उसका मुँह न देखूँ।" शाह की आँखों से आँसू ढुलक पड़े। मखमल की रजाई

में लिपटी अपनी फूल-सी बिटिया को कसकर कलेजे से चिपका लिया।

"हाँ-हाँ, ठीक कह रहा हूँ जजमान! उखाड़कर फेंक दो खुशी की इस मनहूस बाली को! अगर ऐसा नहीं किया तो, प्राणों से हाथ धो बैठोगे। रही शान्ति और अनुष्ठान की बात, सो भगवान के दरबार में घूस नहीं चलती। शाह जी, मोतीराम पाण्डे कोई लम्पट और वंचक पण्डित नहीं है, जो इसी बहाने जजमान से पैसे ऐंठ ले। जो विषैला साँप हमें कुंडली में दिखा, उसे तुम्हें दिखाना



हमारा परम धर्म था। अब चाहे तुम उसका फन कुचलकर मौत से छुट्टी पा लो, चाहे आस्तीन में पालकर दूध पिलाओ। हमारी सीख मानो तो इसे या तो किसी घने जंगल में छोड़ आओ या फिर नदी-नाले में डुबोकर छुट्टी करो। समझे !"

शाहनी एक चीख मारकर बेहोश हो गई। बच्ची लुढ़ककर गोदी से गिर गई। जो गुलाब शाह उसे दिन-भर पान के पत्ते-सी फेरता था, वह उसका बिलखना सुनकर भी पत्थर बना बैठा रहा। यह कैसा दण्ड दे गया उसे अन्तर्यामी! अपना एक-एक पाप उसे किसी चलचित्र की पलटती तस्वीरों की भाँति नज़र आने लगा।

उसके दिवंगत मित्र दुर्गाशाह की पत्नी दयावती तीर्थ जाने से पहले अपनी मुहरों-भरी हण्डिया कितने विश्वास से उसे सौंप गई थी। न कोई लिखत-पढ़त, न कोई हुण्डी। "तीर्थ से लौटकर ले जाऊँगी," उसने कहा था। "क्या करोगी इतने रुपयों का भाभी?" सेठ गुलाब शाह ने फिर सामान्य-सी ठिठोली भी कर दी थी, "अगर इतनी मुहरें देख मेरी नीयत डोल गई तब?"

"तब क्या देवर, मैं क्या तुमसे लड़ने आऊँगी! एक ही लड़का है मेरा। तुम्हारी नीयत बिगड़ना भी चाहेगी, तो उस बिना बाप के गऊ-से सीधे छोकरे को देखकर बिगड़ नहीं पाएगी।" दयावती ने कहा था।

लाखों में एक बेटा था दयावती शाहनी का। गुणों में एकदम अपने बाप पर गया था। शान्त, भोला चेहरा। सिर झुकाए आता और चुपचाप माँ की धरोहर से फीस के रुपए ले जाता। माँ बेचारी तीर्थयात्रा से कभी लौट नहीं पाई। प्रयागराज के कुम्भ मेले की भीड़ में चटनी-सी पिस गई थी। तारक बेचारा धर्मशाला में रहता, अपना खाना आप बनाता। बर्तन भी मलता और स्कूल जाता। न किसी से झगड़ा, न किसी से मेल। पाँच-छह महीने तक, गुलाब

शाह उसे फीस देता रहा। फिर एक दिन, जब अपने मुंशी मुसाहिबों से घिरा वह बही-खाता देख रहा था, तभी सिर झुकाए दयावती का निरीह बेटा तारक आकर खड़ा हो गया। डरे-सहमे स्वर में उसने कहा—"काका, आज फीस जमा करनी है। रुपए चाहिएं।"

बस, फिर क्या था! दानव से सेठ ने आव देखा न ताव! पास धरा डण्डा उठाया और धर दिया उसकी खुली पीठ पर, "जिसे देखो, वही खप्पर ताने गुलाबशाह के दरवाज़े खड़ा है। अजी, यहाँ कोई सदाबरत खोल रखा है मैंने? देखो भाई, माँ मरी तो बिना मीन-मेख निकाले मैं इस छोकरे की फीस भरता रहा। अब कोई पूछे इन साहबज़ादे से, यह मेरा क्या लगता है? भतीजा या भांजा? मेरा अपराध इतना ही है कि मैं इसके बाप का दोस्त बिरादरी था। अब मैं भी आखिर कब तक, किसका दण्ड भरूँ? ऐसे तो, गाँव में अनाथ छोकरे न जाने कितने भरे पड़े हैं!"

बेचारे तारक की आँखें आश्चर्य से चौंकी। फिर उसने अपनी छलछलाई दृष्टि झुका ली। मुँह खोलकर वह माँ की मुहरों-भरी हडियाँ की बात नहीं कह पाया। बिना एक शब्द कहे, वह सिर झुकाए चुपचाप बाहर निकल गया। फिर कभी किसी ने उसे सेठ के दरवाजें पर नहीं देखा।

क्रूर शाह को भला गाँव में कौन नहीं जानता था! आज उसी शाह को अपना एक-एक अन्याय सालने लगा। भीखू हलवाई के लगान ने देने पर, उसे देवदार के पेड़ से बँधवा, कोड़ों से पिटवाया। रात-भर ठण्ड में अकड़ने से वह मर गया था। जब उसकी जवान विधवा, अपने दो अनाथ बच्चों को लेकर, उनके पास दया की भीख माँगने खड़ी हुई, तो उसने अपने शिकारी तिब्बती अप्सू कुत्ते खोल दिए थे। उसे हड़बड़ाकर भागती देख, ताली पीट-पीटकर हँसा था। आज विधाता इसी से तो उसके भूखे मुख में ग्रास धर

कर स्वयं छीन रहा था। फिर उसने कलेजा मज़बूत किया और अपने सबसे क्रूर मुसाहिब देवीसिंह को बुलाकर कहा, "जा रे, देविया! ले जा इस राक्षसी छोकरी को और रणबण के घने जंगल में छोड़ आ। वहाँ आजकल आदमखोर लगा है। चटपट इसे हड़प ले, तो मेरी जान बचे।"

पलक झपकते ही हृदयहीन देवीसिंह मखमली चदरिया में लिपटी उस फूल-सी सुकुमार बिटिया को रणबण के भयावह, घने जंगल में छोड़ आया। वहाँ दिन दुपहरी को भी अमावस का अँधियारा छाया रहता था। किन्तु भगवान का हाथ जिस पर हो, पूरा जग बैरी होने पर भी क्या कोई उसका बाल बाँका कर सकता है?

अंग्रेज़ों की हुकूमत का जमाना था। जिस कुख्यात आदमख़ोर के लिए गुलाब शाह ने अपनी नवजात पुत्री का नाश्ता सजाकर भेजा था, उसी के लिए ज़िले के बड़े हाकिम टर्नर साहब ने भी एक तोहफ़ा उसी पेड़ से बाँधकर रख दिया था। एक मोटा-सा पाठा, पेड़ से बँधा मिमिया रहा था। उधर मचान पर भरी बन्दूक लिए साहब स्वयं वनराज की प्रतीक्षा कर रहा था।

अचानक उस मिमियाने के बीच, उसने उस जंगल में नन्हीं बच्ची के रोने की आवाज़ सुनी। वह चट-से नीचे उतर आया।

नन्हीं-सी गुलाब की कली, सोने की डली, हरी-हरी दूब पर मखमल की रजाई में लिपटी, अपने गोलमटोल हाथ कान से सटाए, प्राणपण से चीख रही थी—'केंहें-केंहें।' साहब ने चट-से उसे उठाया और छाती से लगा लिया। फिर बन्दर की-सी फुर्ती से उचककर मचान पर बैठ गया। उधर वनराज गरजा, इधर सधी बन्दूक का अचूक निशाना दगा—धाँय-धाँय।

वह क्रिसमस की रात टर्नर साहब के जीवन की सबसे सुखद रात थी। वह अपनी मेम के लिए बड़े दिन के दो तोहफ़े एक साथ लिए जा रहा था। फूल-सी सुकुमार बालिका और नौ फुटे आदमख़ोर की सुनहरी खाल। उस दिन बड़े साहब के डिनर का भला क्या कहना! न जाने कितनी तैयारियाँ हुईं और कैसे-कैसे केक बने। बंगले के बैरे, बटलर, फ़र्राश, दरबान सबने दावत खाई। मेम बहुत ही खुश थी। कभी बच्ची को छाती से लगाए नाचती, कभी गाती



और कभी सहमकर साहब से पूछती, "ऐजी, कहीं मज़ाक तो नहीं कर रहे हो मुझसे? अपने किसी मातहत की बिटिया को तो एक दिन के लिए नहीं माँग लाए? कोई आकर छीन तो नहीं ले जाएगा इसे?"

साहब हो-हो कर ज़ोर से हँस उठता, "नहीं, नहीं डार्लिंग! यह तो उसी आदमख़ोर की बिटिया लगती है मुझे। वहीं पड़ी-पड़ी रो रही थी।"

मेम को भला कहाँ चैन आ सकता था। पत्ता भी फड़फड़ाता, तो वह चौकन्नी हो जाती। क्या पता, कोई माँगने ही आ गया हो उसे।

वह उसे गाल से सटाकर कहती, "एकदम लाल है लड़की। तब ही तो मैंने इसका नाम धरा है 'ऐम्बर'। पर सुनो जी, अब अपनी बदली कहीं दूर करवा लो—काबुल, कंधार या नौशेरा। मुझे न जाने कैसा डर लगता रहता है। कोई इसे मुझसे छीन न ले।"

उधर बिटिया के जाने पर शाहनी एकदम ही बौरा गई थी। कभी चिंघाड़ मारकर घायल हथिनी-सी इधर-उधर भागती। अपना कीमती लहंगा और गुलबदन की चुँदरी चीर डालती। कभी पति की मूँछें ही पकड़कर उखाड़ने लगती। कहती, "अरे मुए हत्यारे! तूने ही छीन ली मेरी बिटिया।" मुसाहिब देवीसिंह की तो वह प्राणों की ही प्यासी बन गई थी, "बोल अभागे, किस जंगल में छोड़ आया तू मेरी बिटिया को ?"

हारकर एक दिन देवीसिंह शाहनी के पैर पकड़कर सब कुछ उगल गया था, "रणबण के जंगल में उसे छोड़कर आया, उस दिन अंग्रेज़ कलक्टर शेर के शिकार के लिए मचान लगाकर बैठा था। सुना है, उसके कोई बच्चा नहीं है। हो सकता है, वही उठा ले गया हो।"

बस फिर क्या था! सूत्र हाथ में आते ही शाहनी कूदती-फाँदती नैनीताल पहुँच गई।

मेम अपने मखमली लॉन में सतरंगी छतरी लगाए, मोम मक्खन-सी बिटिया की मालिश कर रही थी। शाहनी एकदम पालतू बिल्ली के से पंजे टेकती, उसके पैरों के पास बैठ गई। अपने कलेजे की टुकड़ी बिटिया को देख, उसका सारा पागलपन हवा हो गया।

"कौन हो तुम? कैसे घुस आई बंगले में।" मेम जैसे बौरा गई।

"हुजूर, मेम साहब!" उसने गिड़गिड़ाकर मेम साहब के पैर पकड़ लिए, "गुस्सा न हों, सरकार! मैंने आपकी गोद में यह बेबी देखी तो लपक आई। सोचा, शायद आपको आया की ज़रूरत हो।" शाहनी ने बात बनाते हुए कहा।

"ओह, तुम आया का काम जानता?" मेम साहब खिल गई।

"हाँ-हाँ, मेम साहब! सब काम जानता।" शाहनी ने लपककर बच्ची को गोद में ले लिया। बेटी को गोद में लेते ही वह अचानक सारा अभिनय भूल गई। झर-झरकर उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

मेम उसे आश्चर्य से देख रही थी। "ओह, तुम रोता क्यों, आया ?" मेम ने पूछा।

"हुजूर, मेरी भी एक ऐसी ही बिटिया थी। इस बेबी को देखा, तो उसी की याद आ गई।" उसने आँखों के आँसू आँचल से पोंछ लिए।

मेम साहब ने उसे सन्देह से देखा कहीं यही तो नहीं है इस बच्ची की माँ ! फिर पूछा, "क्या तुम्हारा बेबी बीमार हुआ था, आया ?"

"बीमार नहीं हुआ, मेम साहब। जन्म लेते ही मर गई थी।"

"मतलब, तुम इस बेबी को दूध पिलाने सकता?" मेम ने शाहनी की ओर देखा। उत्तर में शाहनी ने चट से, कुर्ती के बटन खोल, बच्ची को छाती से लगा लिया। एक बार फिर उसकी आँखों से आँसू की झड़ियाँ लग गईं।

उसी दिन, शाहनी को बंगले का सबसे हवादार कमरा मिल गया। बढ़िया पलंग, मेज़-कुर्सी, ड्रेसिंग टेबल। फूलदान में फूल। पहनने को बगुले के पंख-सी उजली साड़ी। फर लगा ओवरकोट। उसका जीवन ही बदल गया। कौन कह सकता था, यह वही पागल शाहनी है, जो कुछ दिनों पहले धनकोट गाँव की गलियों में भूतनी-सी बाल फैलाए, कपड़े चीरती-फाड़ती, नंग-धड़ग चिंघाड़ती फिरती थी।

बच्ची ने भी पहले ही दिन से माँ की गोदी पहचान ली। उसका नाम था—ऐम्बर। साहब, मेम साहब 'ऐम्बर ऐम्बर' पुकारती तो वह चुपचाप पड़ी रहती, पर जहाँ शाहनी पुकारती—'मूलन', वह चौंककर इधर-उधर देखने लगती। मेम साहब हँसकर कहती, "आया, 'मूलन' क्यों कहती हो?"

"अन्नदाता, आप चाहे जिस नाम से पुकारें। मैं तो बेबी को इसी नाम से पुकारूँगी।"

उधर गुलाब शाह ने कुछ दिनों तक तो अपनी पगली बीवी के खो जाने का मातम मनाया, फिर अपनी धन-दौलत के नशे में डूब गया। असल में उस खूसट लोभी बूढ़े को न अपनी बच्ची से प्यार था, न बीवी से और न स्वजन से। उसे तो बस अपनी दौलत से प्यार था। इसी से सब दुख भूल, वह अपने बहीखाते को छाती से चिपटा, फिर अपने व्यापार में डूब गया।

टर्नर कलक्टर से कमिश्नर बन गया था। दौरे पर जाता, तो

साथ-साथ दो-दो डाँडियाँ चलतीं। एक मेम की, एक आया की। धीरे-धीरे ऐम्बर बड़ी हो गई। अब वह आया की अँगुली पकड़कर घूमने जाने लगी थी। मेम साहब को 'ममी' और आया को 'इजू' कहकर पुकारती। शाहनी ने बड़े यत्न से उसे यह कहना सिखाया था।

"ओह आया, यह किस नाम से पुकारती है तुम्हें? क्या मतलब है इजू का?" मेम पूछती।

"इजू पहाड़ी में माँ को कहते हैं सरकार! मैंने ऐम्बर को दूध पिलाया है न, अन्नदाता!" शाहनी हंस पड़ती। मेम साहब चुप हो जाती।

सचमुच ही शाहनी की दूध-सी उजली हँसी कड़े से कड़े शत्रु को भी जीत सकती थी।

रात को शाहनी ऐम्बर के कमरे में ही सोती थी। ममी-पापा को गुडनाइट कहकर नन्हीं ऐम्बर अपनी फूलदार रेशमी पोशाक में आया की अँगुली पकड़ सोने चली जाती। पलंग पर लेटते ही, शाहनी के गले में बाँहें डालकर कहती "इजू, कहानी सुनाओ।"

उसके लच्छेदार रेशमी बालों में अँगुलियाँ फिराती शाहनी उसे एक से एक बढ़िया कहानी सुनाती—पहाड़ के कालू वीर की कहानी। जादूगर सिधुवा-बिधुवा की कहानी। सुनपता शौक की सुन्दरी पुत्री रजुला मालूशाही की कहानी और फिर गाती मीठी-मीठी पहाड़ी लोरियाँ।

निन्नी छै निपुरी छै—बोलो छै बिरालु छै। निनुरी को भोगी छे—ऐजा निना। —अरी मेरी बिलौटा, अरी मेरी बच्ची को सुला जा निन्नी। फूल-सी सुकुमारी, कमिश्नर साहब की राजकन्या सो जाती, तो शाहनी घंटों उसका भोला मुखड़ा निहारती रहती।

हाय, एकदम गुलाबशाह पर पड़ी थी लड़की, "अरे कसाई,

तू इसे एक बार भी देख लेता तो क्या अपने कर्मों को नहीं रोता? हाय, ऐसी फूल-सी बिटिया को तूने बाघ का गस्सा बनाने, रणबण के जंगल में फिंकवा दिया। हाय, कैसा पत्थर का कलेजा रहा होगा रे तेरा!" शाहनी बुद्बुदाती। पर कभी-कभी उस सुख के बीच भी वह अपने पति, अपने ऐश्वर्य और कोठी के लिए व्याकुल हो उठती, "हाय, कहाँ गए वे दिन, जब बीसियों नेपाली दासियाँ उसे बादाम रोगन की मालिश कर, कस्तूरी गोरोचन का लेप लगाती थीं। जब वह सोलह-सोलह गजी मखमली लहंगे घेर-घुमेर घुमाती, सोने के पायजेब खनकाती हुई महल की अटारियों में घूमती थी—छम-छम, छम-छम। फिर गुलाब शाह की सूरत उसकी आँखों में तैर उठती—'अचकन पर जड़े हीरे-मोती के बटन। कानों में सोने के मुंदड़े। कंठ में जगमगाता कठुला। पान रचे ओंठों पर बिच्छू के डंक सी ऐंठी-तनी मूँछें। लाख क्रूर हो, था तो उसका पति ही। कभी-कभी उसे दमे का विकट दौरा पड़ता था। तब वह रात-भर उसके सिरहाने बैठी, उसकी छाती सहलाया करती थी। अब कौन देखता होगा अभागे को! वह सोचती।"

एक दिन साहब और मेम साहब ने बुलाकर एक भयानक चुनौती का चुग्गा उसके सामने डाल दिया, "देखो आया, अब तुम्हारा वतन आज़ाद हो गया है। हम हिन्दुस्तान छोड़कर नहीं गए, तो हमें भगा दिया जाएगा। इसी से हमने सोचा है कि हम भी इज्ज़त के साथ अपने वतन चले जाएँ। ऐम्बर भी हमारे साथ जाएगी। तुम यहाँ रहना चाहो, तो हम तुम्हारे लिए ऐसा इन्तज़ाम कर जाएंगे, जिससे तुम चैन से ज़िन्दगी बसर कर सको, पर अगर तुम हमारे साथ चलना चाहो तो शौक से चल सकती हो।"

सारी रात शाहनी छटपटाती रही। एक ओर वतन खींच रहा था, दूसरी ओर मूलन की ममता। 'हाय, कहीं वह वहीं मर गई,

तो चिता को आग भी नसीब नहीं होगी। फिरंगियों के मुलक में कौन किरिया-कर्म करेगा? उसे खूब याद है, उसकी विधवा ननद जब अपने भतीजे के साथ अफ्रीका चली गई थी और वहीं भगवान को प्यारी हो गई थी, तो उसने पूरे आठ-आठ हब्शियों के प्रेतों के साथ मायके आकर ऊधम मचाया था। आखिर गुलाब शाह ने गया की प्रेत शिला में उसका श्राद्ध किया था, तब कहीं उसको प्रेतयोनि से मुक्ति मिली थी। मरने पर भी ओझा नट, उसकी चुटिया खींचें, उसे मिर्च की धूनी दें—ऐसा वह नहीं चाहती थी। पर शाहनी करती क्या? मूलन के बिना वह जी ही कैसे सकती थी!

अन्त में जीत मूलन की हुई। साहब और मेम साहब जब मूलन के साथ हवाई जहाज़ में बैठे, तो फ़र लगा लम्बा कोट पहने, आँखों में आँसू भरे शाहनी भी बैठी थी।

साहब के देश के ढाँचे में उसने बड़ी तेज़ी से अपने को ढाल लिया। अब वह ऊँची ऐड़ी के जूते पहनती। हाथ में बटुआ लिए अंग्रेज़ी भी बोलती थी। छुरी-काँटे से खाना खाना भी सीख गई थी। विलायत की आब-हावा भी उसे माफिक आई थी। कुछ अंश में उसे साहब का वतन हूबहू नैनीताल-सा ही लगा था। ऐम्बर का कद शाहनी से भी लम्बा निकल आया था। साहब ने उसे स्कूल के छात्रावास में दाखिल कर दिया था। छुट्टियों में घर आती तो शाहनी खिल उठती। जब ऐम्बर की छुट्टियाँ खत्म होने को आतीं, तो शाहनी छिप-छिप अपने कमरे में घंटों सिसकती रहती। बड़े सुख-चैन से दिन बीत रहे थे। सहसा साहब के सुखी संसार को दुर्भाग्य का पहला धक्का हिला गया।

मेम बीमार पड़ी। बीमारी भी ऐसी कि डाक्टरों ने जवाब दे दिया, "कैंसर हो गया है।" साहब ने आया से कहा, "डॉक्टर कहते हैं, मुश्किल से महीना-भर जिएगी। सारे जिस्म का खून पानी बनता जा रहा है।"

उसी क्षण, शाहनी ने निश्चय ले लिया, 'जिसने उसे इतने वर्षों से प्रेम-भरा आश्रय दिया है, वह अब हमेशा के लिए जा रही है; तो वह भी उसे नहीं छलेगी। उसे सब कुछ बता देगी।' उसने यही किया भी।

क्रिसमस की रात थी। वह मेम साहब के पैरों के पास आकर बैठी। अपनी पूरी कहानी सुना गई। मेम का रहा-सहा खून भी जैसे पानी बन गया। कैसी थी यह सहनशील हँसमुख औरत! इतने साल कोख की जाई बिटिया की आया बनकर गुजार दिए, पर चेहरे पर कभी शिकन न आने दी।

"बच्ची के लिए तुमने अपना वतन छोड़ दिया। आदमी छोड़ दिया?" मेम साहब बोलीं।

"हाँ, मेम साब!" शाहनी ने जेब से रूमाल निकालकर आँसू पोंछ लिए। विदेश में रहकर, वह आँचल से आँसू पोंछना भूल चुकी थी।

"तुम्हें अपना आदमी याद नहीं आता?"

"आता है सरकार!"

"अपना वतन याद नहीं आता?"

"वह भी याद आता है?" शाहनी की सिसकियाँ बँध गईं। अपने प्यारे देश को वह क्या कभी प्राण रहते भूल सकती थी?

"आया, तुम अपना वतन लौट जाओ। हम तुमको भेजेगा।" मेम ने कहा।

"पर सरकार। मेरी मूलन! मैं उसे छोड़कर कैसे जाऊँगी?"

"वह भी तुम्हारे साथ जाएगी। बाप के रहते मैं उसे बिना बाप की बना दूँ, ऐसी नीच नहीं हूँ।" मेम की आँखों से आँसू बहने लगे।

एक दिन सचमुच ही मेम ने उसे उपहारों से लादकर मूलन के साथ हवाई जहाज़ में बैठा दिया। विदा करते हुए कहा, "जाओ, आया! अपना वतन वापस जाओ। दिल में आए तो वापस आना। नहीं तो जहाँ रहो, खुश रहो।"

न जाने कितनी रेलगाड़ियों, मोटर गाड़ियों में चढ़ती-उतरती माँ-बेटी अपने छूटे गाँव में पहुँचीं। शाहनी को पहले किसी ने नहीं पहचाना। हाय, कितना बदल गया था उसका गाँव! बड़े-बड़े बँगले बिजली के लट्टुओं से जगमगा रहे थे। खेतों में खड़े थे हाथी से विराटकाय ट्रैक्टर।

बड़ी कठिनता से ढूँढ़-ढाँढ़कर अपनी कोठी के अहाते में पहुँची, तो खड़ी ही रह गई। द्वार पर एक बड़ा-सा बोर्ड लगा था—'धरमावती हायर सैकेंडरी स्कूल'। तब क्या उसका गुलाब शाह भूला नहीं था अपनी धरमावती को! शाहनी की आँखें डबडबा आईं। सोचने लगी, 'न जाने बेचारा ज़िन्दा भी है या नहीं!' "क्यों भाई, जिनकी यह कोठी है, वह शाहजी कहाँ गए?" उसने डरते-डरते एक बूढ़े से पूछा।

बस, फिर क्या था। बूढ़े ने अपनी ऐनक को सीधा किया और शाहनी को पहचान लिया, "अरे, यह तो अपनी धरमो लगती है। अरी, कहाँ थी इतने दिन? अजी, सुनती हो! अपनी धरमो लौट आई।"

बूढ़ा उसका मामा था। देखते ही देखते उसे और मूलन को देखने पूरा गाँव जुट गया। फिर उसने गुलाब शाह की पूरी कहानी सुन ली। लाखों रुपयों की चल-अचल सम्पत्ति का ट्रस्ट बनाकर

बूढ़ा शाह साधु बनकर निकल गया था। जाते-जाते उसने कहा था, "इसी दौलत के नशे ने मुझे अंधा बना दिया है। अब क्या करूँगा इस दौलत का? अपनी लक्ष्मी-सी बहू को गँवा दिया। फूल-सी बिटिया को अपने हाथ से बाघ को जिमा दिया। अब पाप धोने जा रहूँ, पंचो!"

शाहनी चाची के आने का समाचार सुनकर तारक भी भागता-भागता उसके पैर छूने आ गया। वही दयावती का बेटा तारक, जिसका सर्वस्व कभी गुलाब शाह ने हर लिया था।

"काकी, काका जाने से पहले मेरा धेला-पाई अदा कर गए।" उसने कहा तो शाहनी पति-शोक से फिर विह्वल हो उठी।

शाहनी और मूलन को अपनी मोटर में बैठा तारक, न जाने किन-किन तीर्थों में शाह को खोजता फिरा था। अब वह पढ़-लिखकर बहुत बड़ा अफसर बन गया था।

एक दिन शाहनी ने कहा, "बेटा तारक, अब तुम अपनी नौकरी पर लौट जाओ। आखिर कब तक छुट्टी लेते रहोगे ? मेरा मन कहता है, हम दोनों उन्हें एक न एक दिन ढूँढ़ ही लेंगी।"

ठीक ही कहा था उसके मन ने। दोनों माँ-बेटी जब एक दिन थकी-हारी हरिद्वार के गंगा-तट पर तीर्थ-यात्रियों को नहाते देख रही थीं, सहसा शोर मचा, "डूब गया, डूब गया। अरे, वही खंजरी वाला बैरागी।"

शाहनी का माथा ठनका। बेटी से बोली, "अरी, हो न हो, यह तेरा बाप ही होगा। हाय, अभागा तैरना भी नहीं जानता था ! हाय मैया, मैं क्या करूँगी?"

सहसा मूलन तीर की तेज़ी से पानी में कूद पड़ी। घाट पर खड़ी भीड़ चिल्लाने लगी, "अरी, आगे मत बढ़ बिटिया! बड़ी गहरी धारा है गंगा जी की।" पर बिटिया भला कहाँ सुनती! थोड़ी

ही देर में लहरों से जूझती वह खंजरी वाले बैरागी को घाट पर खींच लाई।

खंजरी बह गई, पर बूढ़ा बच गया। लोगों की मदद से बूढ़े को उठाकर माँ-बेटी धर्मशाला में ले गई। आग जलाकर शरीर सेंका। गर्म चाय पिलाई, तो बूढ़ा पूरी तरह से होश में आ गया। बड़ी देर तक वह शाहनी को देखता रहा।

"पहचाना नहीं मूलन के बापू !" मैं हूँ तुम्हारी शाहनी-धरमावती।

"धरमो?" अब बूढ़े के ओंठ भी काँपने लगे थे।

"मुझे माफ़ कर दो मूलन के बापू! मैं न जाती तो क्या तुम ऐसे अली-गली भीख माँगते?" शाहनी ने हिचकी लेते हुए कहा।

"और यह कौन है?" बूढ़ा एकटक मूलन को देख रहा था।

"यह है तुम्हारी बेटी मूलन! उस मुए, नाशपीटे मोतीराम पाण्डे ने कहा था न कि इसका मूल नक्षत्र तुम्हारे प्राण लेगा। सो इसी ने आज तुम्हें प्राणदान दिया है जी! आज मिलता दाढ़ीजार, तो उसी की दाढ़ी उसके पेट में ठूँस देती।"

बूढे ने खोई बेटी को खींचकर छाती से लगा लिया और बच्चों की भाँति सुबकने लगा, "मुझे माफ़ कर दे बेटी !"

"अजी, ऐसे मत रोओ। बेचारी घबरा रही है।" शाहनी ने मूलन को अपनी गोदी में खींच लिया।

"मूलन की माँ, तेरी लाड़ली मुझ भिखारी बैरागी के साथ कैसे रहेगी ? जाओ, तुम दोनों लौट जाओ?"

"और तुम?"

"मैं कैसे जा सकता हूँ मूलन की माँ! अभी मेरा प्रायश्चित पूरा नहीं हुआ।" बूढ़ा बोला।

"कैसा प्रायश्चित जी! क्या अभी भी भीख माँगने का इरादा

है मूलन के बापू?'' शाहनी अब सचमुच ही तुनक गई।

''अभी एक प्रायश्चित बाकी है। तुझे तारक की याद है ना धरमो? उसके साथ मैंने बड़ा अन्याय किया था।''

''कैसा अन्याय जी! उसका सब रुपया चुका चुके हो। खुद कह गया है वह मुझसे !''

''रुपया तो चुका दिया मूलन की माँ! पर ब्याज कहाँ चुका पाया? जब तक गा-बजा, उसके ब्याज की एक-एक पाई न चुका दूँ, मैं चैन की नींद नहीं सो सकता।''

''अच्छा जी, बहुत भगत बन चुके हो। अब ब्याज तुम्हें नहीं चुकाना होगा। चलो, हमारे साथ घर। वहीं उसे बुलाकर हम जल्दी ही उसका ब्याज चुका देंगे।''

''कैसे ?'' शाह आश्चर्य से शाहनी को देखने लगा।

''सुनो जी, अपनी इस चाँद के टुकड़े जैसी बिटिया को उसके हाथ में थमाकर कहेंगे—लो बेटा, यह रही हमारी सारी पूँजी और यही है तुम्हारा ब्याज।''

''सच कहता हूँ शाहनी, फिरंगियों में रहकर तू अपना दिमाग़ भी लाट कमिश्नरों-सा बना लाई है। यह बात तो मेरे दिमाग़ में ही कभी नहीं आई।''

दोनों ने घर लौटते ही धूमधाम के साथ मूलन का विवाह तारक से कर दिया। एक बार फिर पूरा ग्राम मेवे डली खीर और मोयनदार कचौड़ियों से अजीर्ण हो गया। तारक अपनी लाल-लाल बहू को लेकर बारात वापस ले गया। दूसरे ही दिन शाह एक नई खंजरी ले आया। दोनों फिर तीर्थ-यात्रा पर निकल गए।

सूखा गुलाब

भूरी लोमड़ी के रूप की पूरे जंगल में चर्चा थी। रेशमी, गुदगुदी, मोटी पूँछ। कजरारी आँखें, चमकती भूरी देह। यही नहीं, कण्ठ भी उसका अपूर्व था। जहाँ सन्ध्या होते ही उसकी बिरादरी अपना कीर्तन आरम्भ करती हुई 'हुआ हुआ' करती, भूरी का मीठा कण्ठ, उस बेसुरी गूँज में भी कोयल-सा टहूकता।

भूरी में एक ही अवगुण था। उसे अपने रूप का बहुत घमण्ड था। घण्टों वह श्रृंगार में ही बिता देती थी। सुबह उठते ही चिकनी मिट्टी पोत, ओस में लोट-पोट लेती। फिर कँटीली झाड़ी से कंघे-बुरुश का काम ले, पूँछ सँवारती। सँवरी पूँछ की कुण्डली बना, उसमें नित्य गुलाब का एक ताज़ा फूल खोंस लेती। जंगल का कोई भी ऐसा जानवर नहीं बचा, जो उसके रूप का प्रशंसक न हो। किन्तु भूरी थी कि पूँछ में गुलाब का फूल खोंसे, गर्व से गर्दन उठाकर इठलाती फिरती। किसी को मुँह नहीं लगाती थी। एक बार जंगल के बुजुर्गों ने पंचायत बुलाई। भालू उम्र में सबसे बड़ा था। उसी ने सभापति का आसन ग्रहण किया। बोला—"भाइयो! हमारे जंगल की प्रतिष्ठा खतरे में पड़ गई है। आज तक हमारी बहू-बेटियों ने कभी हमारी प्रतिष्ठा पर आँच नहीं आने दी, पर भूरी लोमड़ी ने तो हम सबकी नाक ही काट ली है। अब आपसे क्या छिपाऊँ,

मेरा इकलौता बेटा पिंचू खाना-पीना छोड़, भूख हड़ताल पर बैठा है। कहता है, विवाह करेगा तो भूरी से, नहीं तो प्राण त्याग देगा! आप सब हमारे कुल के शौर्य और पराक्रम से तो परिचित हैं ही। अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना अच्छा नहीं लगता। जिसने भी रामायण पढ़ी है, हमारे अपूर्व पराक्रमी पूर्वज जामवन्त की शौर्य-कथा से वह अनभिज्ञ नहीं होगा। यह ठीक है कि हमारे कुल के कुछ दोगले, नाक में नकेल डलवा, मनुष्य के गुलाम बने, सड़क चौराहों पर नाचते, चर्खा चलाते कुल का नाम बदनाम कर रहे हैं। पर किस कुल में कुपुत्र नहीं जनमते? इस समय मेरे पास इसी जंगल के सत्रह पिताओं की अर्जियाँ मौजूद हैं। सभी के सुपुत्र भूरी से विवाह करना चाहते हैं। आप ही सोचिए, यह सब होता रहा, तो जंगल बरबाद हो जाएगा।''

''धिक्कार है! धिक्कार है!'' सभा भूरी को धिक्कार उठी। पर वह निर्लज्ज पूँछ में गुलाब लगाए, वहीं बैठी, मुसकराती रही।

''चाहे हाथी हो या छछूँदर, हमारे गणतन्त्र में सब बराबर हैं।'' भालू ने अपने रोएँदार पैर पर ज़ोर-ज़ोर से हाथ मारकर कहा।

''बिलकुल!'' सभा ने समर्थन किया।

''मैंने इसके बाप से भी बात की थी। उसका कहना है कि भूरी कहती है, ब्याह करेगी तो हमारे राजाधिराज बब्बर शेर के बेटे से। अब आप ही बताएँ, ऐसी अनहोनी बात कहीं सुनी है ! जल्दी ही इसका विवाह नहीं हुआ, तो यह भूरी न जाने क्या-क्या गुल खिज़ाएगी। पंचो, जैसे भी हो, इसके फेरे फिरवाने ही होंगे। भूरी जहाँ भी हो, पंचों के सामने खड़ी हो जाए।''

इठलाती, मुसकराती भूरी भरी सभा में निडर खड़ी हो गई।

''देखो, भूरी बेटी!'' भालू ने बड़े मीठे स्वर में कहा, ''हम

चाहते हैं कि तुम्हारे ही योग्य कोई वर ढूँढ़कर तुम्हारे हाथ पीले कर दें।"

"धन्यवाद, हुजूर! मैं तो निश्चय कर चुकी हूँ विवाह करूँगी तो शेर के बेटे से। चाहे इस जंगल का हो, चाहे सुन्दरवन का।"

उसकी सीनाज़ोरी देख, भालू का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। फिर भी उसने अपने को रोक लिया। उसी मीठी आवाज़ में बोला, "बेटी, पागलपन मत कर। ऐसा क्या आज तक किसी ने कभी सुना है? ब्याह-शादी तो अपने ही कुल में शोभा देती है।"

"यह सब कहने की बात है," भूरी ने तुनककर कहा, "ज़रा शहरों में जाकर देखिए। अच्छे-अच्छे घरों के लड़के-लड़कियाँ जात-पाँत का बन्धन ठुकरा, मनचाहा विवाह रचा रहे हैं।"

"अरी पगली!" वे तो मनुष्य हैं। प्राणियों में सबसे अधिक मूर्ख जाति है मनुष्यों की! स्वार्थी, घमण्डी, हृदयहीन। ऐसे न होते, तो क्या हम वन में विचरने वाले निर्दोष जीवों को वे अपनी बन्दूक का निशाना बनाते!"



भालू के ओजस्वी भाषण पर तालियों की ज़ोरदार गड़गड़ाहट हुई।

"इसी से कहता हूँ बेटी! घमण्ड त्याग। हम तेरे लिए सुयोग्य वर ढूँढ़ देंगे।" भालू बोला।

"धन्यवाद हुजूर! मुझे दुख है कि मैं अपना निश्चय नहीं बदल सकती। विवाह करूँगी तो शेर से। नहीं तो आजन्म कुँआरी रहूँगी।"

"तू कहे तो हम देश-भर के गीदड़ों की न्योत, तेरा स्वयंवर रचा दें?" दयालु सरपंच भालू ने दूसरा उदार प्रस्ताव रखा।

"नहीं, हुजूर! आप लाख स्वयंवर रचाएँ। उसमें आएँगे तो सब गीदड़ ही। मुझे उनकी सूरत से भी नफ़रत है।"

"छि-छि, धिक्कार है उसे, जो अपनी जाति से ही घृणा करे। भूरी, तुम्हें पंच आदेश देते हैं कि तुम चौबीस घण्टे में जंगल खाली कर दो, अन्यथा हमें तुम्हारा मुकदमा महाराजा की अदालत में पेश करना होगा।" भालू का स्वर इस बार थोड़ा कड़ा हो गया था।

भूरी का चेहरा भी फक पड़ गया। महाराजा की अदालत में जाने का अर्थ था, निश्चित मृत्यु दण्ड। महाराजा की नीयत का क्या कोई ठीक था ! मुकदमा सुनने से पहले ही वह मुकदमे सहित अभियुक्त को टप से उठाकर मुख में धर लेते थे। इससे अच्छा था, वह इस दकियानूसी जंगल को ही त्याग, कहीं और चल दे।

सुबह होने से पहले ही भूरी ने शृंगार किया। पूँछ में गुलाब का फूल खोंसा और चल दी सुन्दरवन की ओर। सुन्दरवन पहुँचते ही भूरी का सारा घमण्ड चूर-चूर हो गया। घने बीहड़ जंगल की अनजान गहराई में भूरी एक झाड़ी में दुबककर छिप गई। तीन दिन से पेट में कुछ नहीं गया था। प्यास से गला सूख रहा था। चमकती चमड़ी भी सूखकर काली पड़ गई थी। धूल से सनी,

उसकी रेशमी पूँछ पुरानी फूल झाड़ी-सी नीचे लटक गई थी। गुलाब का फूल सूख कर मुरझा गया था। एक-एक पल में चिंघाड़ते हाथी, गरजते शेर-शेरनियाँ, रंगीन पूँछों की इन्द्रधनुषी छटा बिखेरते मोर-मोरनियाँ ऐसे निकल रहे थे, जैसे गणतन्त्र दिवस की परेड। भूरी झाड़ी में छिपी आँसू टपका रही थी। वह मन ही मन कलप रही थी, हाय, हाय कैसी मूर्ख हूँ मैं। आज तक मैं यही सोचती रही कि मैं ही संसार की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी हूँ, पर जिस सुन्दरवन में ऐसे-ऐसे सजीले सुन्दर पशु-पक्षी हों, वहाँ शेर भला मुझे क्या पसन्द करेंगे? इससे तो अच्छा था, अपने जंगल के सरपंच भालू के बेटे कलूटे कल्लू से ही ब्याह कर लेती।'

चुपचाप झाड़ी में छिपी टसुए बहा रही थी। तभी न जाने कहाँ से एक लोमड़ी वहाँ आ टपकी। पहले तो वह भूरी को देखकर चौंकी, राम, रे राम! यह कैसी लोमड़ी। मोटी पूँछ और उसमें गुलाब का फूल! फिर आँखों में आँसू। इस वन में तो किसी भी जानवर की आँखों में आज तक उसने आँसू नहीं देखे।

"राम, राम, बहन ! लगता है, कहीं बाहर से आई हो। क्यों? अरे, रो क्यों रही हो तुम ?" उस लोमड़ी ने पूछा।

उसकी सहानुभूति पाते ही भूरी फूट-फूटकर रो पड़ी फिर उसने अपनी पूरी कहानी सुना दी।

"क्या करूँ, जीजी! अनजाने में ही ऐसी प्रतिज्ञा कर बैठी। सोचा था, अपने जंगल की घमण्डी बिरादरी से तो कोई आशा नहीं। क्यों न कहीं और जाकर अपने मन का राजा ढूँढ़ लाऊँ। पर यहाँ के शेरों की अयाल के सुनहरे बाल, तुर्रम मूँछें और तुर्री दुम देखकर यही लगता है कि जीवन-भर कुँआरी रहना ही मेरे भाग्य में बदा है।" भूरी बोली।

सुन्दरवन की लोमड़ी थी एक नम्बर की धूर्त और चालाक।

उसका इकलौता बेटा भोंदू एक पैर से लँगड़ाता तो था ही, दिमाग़ का भी एकदम ठस्स था। लँगड़े पैर के कारण सुन्दरवन का कोई भी सियार उसे दामाद बनाने को राज़ी नहीं था। उसकी माँ ने सुन्दरी भूरी को देखा, तो उसके मुँह में पानी भर आया।

"हाय, हाय, कुँआरे रहें तुम्हारे दुश्मन! यह रूप, यह रंग, ऐसी आम की फाँकें-सी आँखें और ऐसी चंवर गाय-सी पूँछ। वारी जाऊँ। मैं एक ऐसे ही शेर के गबरू जवान बेटे को जानती हूँ। तुम उसे देखते ही जयमाला डाल, उसके पैरों में लोट जाओगी। पर...!" कहकर वह चतुर लोमड़ी चुप हो गई।

"चुप क्यों हो गई, जीजी! पर क्या! कहो ना, जीजी!" उतावली भूरी अपनी भूख-प्यास सब भूल गई।

"बस, क्या बताऊँ, बहना ! पैर में दोष है। असल में बचपन से ही पहलवानी का शौक था। एक जंगल में रपट गया और हड्डी टूट गई।" चतुर लोमड़ी चतुराई से बोली।

"तो क्या हुआ। लँगड़ा भी है, पर है, तो शेर। बस एक बार मुझे दिखा भर दो जीजी! क्या पता, वह ही मुझे नापसन्द कर दें।"

"हाय हाय, इस रूप को देखकर यदि वह निगोड़ा नहीं रीझा, तो मैं उसकी सुनहली मूँछें उखाड़कर धर दूँगी। सच कहती हूँ बहन! जब से तुम्हें देखा है, मेरे मन में बार-बार यही लहर उठ रही है कि काश भगवान ने मुझे लोमड़ी न बनाकर, शेर बनाया होता !" लोमड़ी बोली।

"हटो जीजी! तुम तो लगीं मजाक करने। जाओ, उन्हें यहीं लिवा लाओ। मैं तब तक हाथ-मुँह धोकर तैयार हो लूँ।"

"ठीक है, ठीक है। इसी बेरी तले रहना। मैं उसे बुला लाती हूँ।"

इधर भूरी ने नदी में रगड़-रगड़कर मुँह धोया। पूँछ फटकारी।



गुलाब तो मिला नहीं, चार-पाँच टेसू के फूल ही पूँछ में खोंस, सकुचाती अपने भावी वर की प्रतीक्षा करने लगी।

उधर सुन्दरवन की चतुर लोमड़ी ने कान पकड़कर अपने बेटे भोंदू को उठाया और बोली, "चल करमजले, मेरे साथ। तेरे लिए सुन्दरी बहू ढूँढ़कर लाई हूँ, पर कहीं मुँह खोलकर सब गुड़ गोबर मत कर देना।" जान-बूझकर ही वह धूर्त, अँधेरा होने पर उसे साथ ले चली। जाने से पहले उसने बहुत पहले कहीं से चुराकर लाई हुई शेर की खाल, उसके शरीर पर मढ़ दी थी।

भूरी ने देखा, तो लजाकर सिर झुका लिया। हाय-हाय, कितना सुन्दर नन्हा-सा शेर था। एकदम उसी के कद का। चमकती पीली चमड़ी पर वैसी ही काली-काली बूटियाँ थीं, जिनके सपने वह न जाने कब से देख रही थी। लचकता पैर भी उसने देख लिया था, पर वह तो उसकी सुनहली मूँछों और सलोने चेहरे पर पहले ही रीझ चुकी थी।

"क्यों छोटे सरकार! दुलहन पसन्द है?" चालाक लोमड़ी ने पूछा।

"हाँ !" भोंदू ने गर्दन हिला दी।

"और बहना, तुम्हें? तुम्हें? तुम्हें पसन्द है ना अपना दूल्हा?"

भूरी ने लजाकर चेहरा झाड़ी में छिपा लिया।

"देखो, छोटे सरकार!"—धूर्त लोमड़ी ने फिर कहा, "इस सुन्दरवन में यह पहला अन्तर्जातीय विवाह हो रहा है। यहाँ के घमण्डी जानवरों को तो आप जानते ही हैं। सुनेंगे, तो तूफान खड़ा कर देंगे। इसी से आपसे हाथ जोड़कर विनती है कि अपनी सुन्दर बहू को लेकर, अभी अपनी ससुराल चले जाओ। और वहीं सब रस्में निबटा लो।"

भूरी अपने अनोखे शेर को लेकर मायके पहुँची, तो पूरी बिरादरी भागती आ गई। सब कहने लगे—"धन्य है यह लड़की!" सुन्दरवन के शेर को ब्याह कर ही नहीं लाई, घर-दामाद भी बना लाई।"

भूरी के बाप ने पूरे जंगल को न्योता दिया। स्वयं महाराजा बब्बर शेर भी पधारे। वह सोच रहे थे, 'देखें तो सही, हमारे कुल के किस नालायक ने अपनी नाक कटवाई है। वहीं चीर कर रख दूँगा अभागे को।' पर दावत आरम्भ हुई, तो स्वयं अभागिनी भूरी के दुर्भाग्य ने ही सुन्दरवन के उस सजीले को चीरकर रख दिया।

भूरी का पिता महाराजा के सामने फर्शी लगाकर बोला, "महाराज, हमारे कुल की यह रीति है कि भोज आरम्भ करने से पहले, हम सब मिलकर मंगल गीत गाते हैं। अन्नदाता, आज्ञा दें, तो हम मंगलाचरण आरम्भ करें।"

"करो चौधरी! अवश्य करो।" महाराजा ने अपनी सुनहली मूँछें ऐंठीं और महारानी के कान में फुसफुसाकर कहा, "महारानी, हमें तो दाल में कुछ काला नजर आता है। लाख सुन्दरवन का

शेर हो, चाल तो सियार जैसी है।''

इधर मंगलाचरण आरम्भ किया गया। 'हुआ-हुआ' करके सियार गीत गाने लगे। अपनी बिरादरी की आवाज़ को सुन, भला संसार का कौन सियार चुप रह सकता था? सुन्दरवन का शेर बना सियार भी गला फाड़कर गाने लगा—'हुआ हुआ।'

चीखने से पहले उसके कण्ठ की नसें फूलीं, फिर छाती तनी, फिर पेट। जल्दी-जल्दी में मढ़ी गई खाल के कच्चे टाँके पटापट टूट गए। एक ओर पीठ नंगी हुई, दूसरी ओर पेट। पास ही बैठे एक शरारती बन्दर ने असली खाल की झलक देखी, तो सुन्दरवन के नकली शेर को पहचान लिया। पकड़कर उसने आधी उधड़ी खाल ऐसे खींच ली, जैसे पके केले का छिलका उतार रहा हो।

'हुआ हुआ के मनोहारी संगीत में डूबा शेर बना सियार, जान भी नहीं पाया कि वह फिर सियार बन गया है।'

''पकड़ो-पकड़ो, यह धूर्त जाने न पाए।''—सारे जानवर चिल्लाए। ''रुको !''—वनराज बब्बर शेर गरजे—''वैसे हम तो सियार का माँस कभी नहीं छूते, पर आज तो इस ठग को, अपने पान के बीड़े में लौंग की जगह डाल, चबाकर थूक देंगे। यही इसका उचित दण्ड है।''

''धन्य हो! धन्य हो!'' की ध्वनि से सभा गूँज रही थी। तभी लँगड़ा अपने दण्ड की भयानक घोषणा सुन, सिर पर पाँव रख कर भागा।

था तो लँगडा, पर हर लँगड़े की तरह वह भागने में गज़ब का फुर्तीला था।

वह फिर कहाँ गया, कोई जान नहीं पाया। सब उसे ही ढूँढ़ने में लगे थे कि अपमानित बेचारी भूरी भी चुपचाप खिसक गई।

उस जंगल में फिर कभी किसी ने भूरी को नहीं देखा।

हमका बिठाव धुँआगाड़ी मा बबुआ

कभी-कभी विक्रम के जी में आता, वह कहीं दूर भाग जाए। किन्तु भागता कैसे? जिस प्रसिद्ध पब्लिक स्कूल के बोर्डिंग में वह रहता था, वहाँ से एक नन्हा परिन्दा भी हाउस मास्टर की नज़रों से बचकर बाहर नहीं जा सकता था और जब छुट्टियों में वह घर आता तो भागना तो दूर, दादी उसे एक मिनट भी आँखों से ओझल नहीं होने देती। अकेले मम्मी-डैडी ही होते, तो उन्हें घिस्सा देना बहुत आसान था। डैडी को अपनी मीटिंगों से फुर्सत नहीं मिलती और मम्मी? मम्मी तो घर पर रहती ही कब थीं। कभी-कभी हवा तूफान-सी एक पल को घर आतीं भी तो उसे चूमचाट, कुछ रुपए थमा, फिर निकल जातीं– कभी फैशन शो देखने, कभी फ्लावर शो देखने, कभी किसी टेनिस या क्रिकेट मैच का आनन्द लेने और कभी सेकेण्ड शो का सिनेमा देखने।

कभी-कभार मम्मी घर में रहती थीं, तो दिन-भर पड़ी-पड़ी सोती रहतीं। शाम को उठते ही हेयर ड्रेसर के यहाँ चली जातीं और लौटकर कहतीं, "विकी डार्लिंग, तुम चाहो तो आज नानी से मिलने जा सकते हो, यहाँ आज रात को ताश की पार्टी है, बड़ा हो-हल्ला मचेगा। तुम ठीक से सो नहीं पाओगे।"

"नहीं, हम नहीं जाएँगे," विकी मुँह फुलाकर कहता।

"अच्छा तो बगल वाली आण्टी के यहाँ खेलना।"

"नहीं, हम यहीं रहेंगे। दादी ने कहा है, रोज़-रोज़ दूसरों के यहाँ नहीं जाते।" विकी तनकर खड़ा हो जाता।

मम्मी बड़बड़ाने लगतीं, "दादी ! दादी !" ...दादी न हो गयीं तूफ़ान हो गयीं ! न जाने क्या-क्या ऊलजलूल बातें सिखाती रहती हैं ! दादी की आड़ में ही लड़का ऐसा बाग़ी बनता जा रहा था। एक दिन, मुँहजोर ने, उसे मायके आई ननद, ननदोई और सास के सामने बुरी तरह झेंपा कर रख दिया था।

"मम्मी, तुमने बाल क्यों कटवा लिए।?" उसने पूछा तो सास के क्रोध की ठण्डी पड़ गई आग में फिर चिनगारी दहक उठी। सात-आठ दिन से वह बहू की इसी केश-कर्त्तन क्रिया को लेकर बड़बड़ा रही थी, "राम-राम, यह कैसा अँधेर किया तूने बहू, पितर पच्छ में सर मुँड़ाकर धर दिया।"

निरुपमा का खून खौल गया था, पति की माँ न होती तो बुढ़िया को औंधा आँग देती।

"सर कहाँ मुँडाया है अम्मा जी, आप भी न जाने कैसी बातें करती हैं!" खिसियाकर उसने कहा था, "बाल इतने पतले हो गए थे कि ढंग की चोटी बनती थी न जूड़ा, इसी से छँटवाकर पर्म करवा लिए।"

"अरी पर्म करवा या गर्म ! कुत्ते की पूँछ कहीं सीधी होती है ! चार-पाँच दिन में फिर सीधे हो जाएँगे और सुना है पूरे एक सौ बीस रुपए खर्च कर आई इन्हें घुँघुरवाले बनवाने में!"

"बताऊँ तुम कैसी लग रही हो, मम्मी !" शैतान विक्रम ने फिर छोंक लगाई, "वो जो अम्मा जी की सहेली हैं ना कीर्त्तनिया माँ जी, एकदम वैसी !" उसकी सास के पास छोटे-छोटे छँटे बालों वाली एक बंगाली विधवा कीर्त्तनिया माता जी आया करती थीं, उन्हीं

से उसकी तुलना कर, विक्रम ने दादी को फिर भड़का दिया था।

"ले बहू, तेरे पेट का जाया ही तुझे कीर्त्तनिया बना गया।"

पर सन्ध्या होते ही निरुपमा सास की बकर-बकर को एक कान से सुन, दूसरे से निकाल, कटे बालों में गुलाब का फूल खोंस, अंकल मेहरा के साथ रेस देखने चली गई थीं। रात को, तास की पार्टी हुई तो विक्रम, मम्मी के लाख हटाने पर भी, वहाँ से नहीं खिसका। सारी रात ही-ही ठी-ठी चलती रही। कई बार डैडी फ्रिज से बोतलें निकालकर लाते, कभी कोई हँस-हँसकर रुपयों-नोटों की ढेरी बटोरता, कभी कोई चेहरा लटकाए बटुआ टटोल बाजी लगाकर हार जाता। अंकल मेहरा सबसे ज्यादा जीते थे, खुशी से उछल-उछल वे कभी मम्मी की पीठ में धौल जमाते, कभी उनके हाथों के पत्ते उचक-उचककर देखने लगते, कभी उनके बालों से फूल निकालकर अपने बालों में अटका बत्तीसी निपोरते, तो विक्रम को बहुत बुरा लगता।

फिर वह जाकर दादी के साथ रजाई में घुसकर सो जाता। बड़ी देर तक दादी उसे कहानी सुनाती रहतीं, फिर उसे नींद आ जाती। सुबह उठते ही मम्मी के कमरे में जाता तो देखता, मम्मी सुबह ही तैरने क्लब चली गई हैं, फिर वहीं से फोन करतीं, "विकी बेटा, आज मैं बाहर ही लंच करूँगी, तुम दादी के साथ खा लेना !"

बस, फिर ऐसे ही उसकी छुट्टियाँ बीत जातीं। पर जाने से एक दिन पहले, मम्मी बहुत बदल जातीं—उसे साथ सुलातीं, साथ खिलातीं, साथ घुमातीं, उसे स्कूल के लिए ढेरों चीज़ें खरीद कर देतीं, और डैडी-मम्मी दोनों उसे पहुँचाने स्टेशन जाते। स्कूल पार्टी को सौंप मम्मी उसे बार-बार चूमतीं, डैडी इतनी ज़ोर-ज़ोर से उससे हाथ मिलाते कि उसकी बाँह दुखने लगती। मम्मी कभी रोती नहीं थीं पर उसके जाने का दिन आता तो दादी सुबह से रोना शुरू कर देतीं, "अरी बहू, ना जाने कैसा पत्थर का कलेजा हैगा तेरा, एक

ही लड़का है उसे भी बोर्डिंग में डाल दिया।''

ट्रेन फक-फककर चल देती, तो विक्रम को सिवाय दादी के और किसी की याद नहीं आती। उसके जी में आता, वह कोई ऐसा काम करे, किसी घातक बहादुरी में अपनी जान दे दे कि मम्मी मज़े से ज़िन्दगीभर पछताती रहें।

तब ही, अचानक एक दिन उसे न स्कूल से भागना पड़ा न घर से, ठीक उस गणित के पीरियड के बीच, उसे स्वयं मुक्ति मिल गई, जिससे उसे बेहद चिढ़ थी। खाकी वर्दी में, एक रोबदार व्यक्ति को लेकर, उसके प्रिंसिपल उसकी कक्षा में आए और उसकी मिस से कुछ कहने लगे। सारे लड़के बड़े अचरज से उस व्यक्ति को देख रहे थे। ऐसे तो प्रिंसिपल आज तक कभी किसी कक्षा में नहीं आए थे। मिस बड़े प्यार से विकी को अपने साथ बुलाकर बाहर ले गईं।

''विकी,'' उसके प्रिंसिपल ने बड़े प्यार से उसकी पीठ थपथपाकर कहा, ''तुम्हारी मम्मी ने इन्हें तुम्हें लाने भेजा है। तुम्हारे डैडी की कार का ऐक्सीडेंट हो गया है। घबराना नहीं, चोट ज़्यादा नहीं है। मेट्रन ने तुम्हारे कुछ कपड़े भी पैक कर दिए हैं, लो....'' कहकर उन्होंने उसे एक अटैची थमा दी।

विकी ऐक्सीडेंट का नाम सुनते ही घबरा गया। डैडी का थका मुरझाया चेहरा, उसकी आँखों में तैर गया। उसके होंठ भी रुलाई के उमड़ते वेग से काँपने लगे। पर उसने अपने को रोक लिया, 'थैंक यू सर' कह उसने अटैची थाम ली। स्वयं प्रिंसिपल, उसकी मिस, उसे कार तक पहुँचाने आए और जब कार चली तो बड़ी देर तक वहीं खड़े उसे हाथ हिला-हिलाकर विदा देते रहे।

कार वहीं खाकी वर्दी वाला अजनबी चला रहा था। कौन हो सकता था वह? वह तो डैडी की स्टाफ कार के ड्राइवर अशरफ को भी पहचानता था, घर के ड्राइवर बाबूलाल को भी। उन्हें क्यों

नहीं भेजा मम्मी ने ? फिर यह कार भी तो नयी थी। पर डैडी की कार का ऐक्सीडेंट हो कैसे गया? वह अजनबी कह रहा था कि डैडी खुद गाड़ी चला रहे थे और कार एक बैलगाड़ी से टकरा गई। उस बात को सुन, वह और चौकन्ना हो गया। डैडी तो इतनी धीमी स्पीड से कार चलाते थे कि रास्ते की चींटी भी नहीं कुचल सकती थी। अक्सर तो मम्मी उन पर झुँझुलाती रहती थीं, "अजी, कितनी धीमी गाड़ी चला रहे हैं आप! पैदल चलने वाले भी हमारी कार को पछाड़ गए !"

उस अजनबी ने शहर की सरहद हटते ही, कार की स्पीड और तेज़ कर दी। एक पल को उसने अपनी पूरी आस्तीन की कमीज़ ऊपर सरका घड़ी में टाइम देखा तो विक्रम की तेज़ पैनी आँखों ने, उस रोयेंदार मज़बूत कलाई के ऊपर गुदा गोदना भी साफ देख लिया—गोदने के दो फूलों वाले गमलों के बीच, उसका नाम गुदा था—'भजनलाल!'

"भजनलाल," उसने हँसकर कहा, "मुझे प्यास लगी है, कहीं पानी मिलेगा ?"

कार चलाता भजनलाल तो ऐसा चौंका, जैसे किसी ने धकेल दिया हो, "तुम मेरा नाम कैसे जान गए ?" उसने ऐसी तीखी आवाज़ में पूछा कि विक्रम सहम गया। कैसा बदतमीज ड्राइवर भेजा था डैडी ने। बाबूलाल हो या अशरफ, क्या कभी उसे तुम कहकर पुकार सकते थे? दोनों दुलार से उसे पुकारते थे—'विकी बाबा।'

"तुम्हारे हाथ में तो तुम्हारा नाम लिखा है ना, वही पढ़ लिया था अभी।" उसने फिर हँसने की चेष्टा की, पर भजनलाल की कठोर 'हूँ' सुनकर वह हँसी उसके होंठों में ही सूख गई।

"लो यह रहा सोता, चटपट उतरकर पानी पी लो," विक्रम उतरा। एक बार मन हुआ, दौड़ लगाकर वहीं किसी झाड़ में छिप

जाए, क्योंकि भजनलाल और जो भी हो उसके कायदे-कानून वाले डैडी का ड्राइवर नहीं हो सकता था। कहीं कुछ दाल में काला अवश्य था। पर जहाँ कार रुकी थी वहाँ था बियावान जंगल, दूर-दूर तक कहीं किसी बस्ती की बत्ती भी नहीं टिमटिमा रही थी।

विक्रम ने जी भर पानी पिया और इसी बीच कार का नम्बर मन ही मन रट लिया। कार पर तो पंजाब का नम्बर था, तब क्या वह उसे भगाकर पंजाब ले जा रहा था। कैसा मूर्ख था वह, जो इस बहकावे में फँस गया। डैडी का ऐक्सीडेंट ही हुआ होता तो क्या मम्मी उसे हवाई जहाज़ से न बुलवातीं? उसके पिता तो बम्बई के प्रमुख उद्योगपति थे। उनके कई मित्र तो उन्हें अपना चार्टर्ड प्लेन ही दे सकते थे। विक्रम के कार में बैठते ही फिर भजनलाल ने हवा-सी गाड़ी भगा दी। शायद उसी तेज़ हवा के झोंके में विक्रम को नींद आ गई।

जब उसकी आँखें खुलीं, तो घोर अँधेरा छा गया था। उस अँधेरे में, उसे भजनलाल की लाल-लाल आँखें और तीखी मूँछें और भी भयानक लगी थीं। उसने डरकर आँखें बन्द कर ली थीं। बड़ी देर बाद गाँव की झोंपड़ियों की टिमटिमाती बत्तियाँ दिखीं और भजनलाल ने कार रोक दी। "शमशेर! बशीर!" उसने इतनी ज़ोर से पुकारा कि विक्रम काँप गया।

अब वह पूरी तरह समझ गया कि उसका स्कूल से अपहरण कर ही भजनलाल लाया है। कितनी ही ऐसी कहानियाँ तो उसे दादी सुना-सुनाकर समझा चुकी थी, "तू बड़े बाप का बेटा है विक्रम ! कभी-कभी तो लगता है इस अमीरी से गरीबी भली। अभी उस दिन सेठ दादूमल के पोते को बदमाश स्कूल से चुरा ले गए। तू कभी किसी के बहकावे में मत आना, समझे !"

आज दादी की सीख ही उसे बार-बार याद आ रही थी। उसके

जी में आ रहा था—काश, दादी यहाँ होती तो वह भागकर उनकी छाती में मुँह छिपाकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगता, पर वहाँ कहाँ थी दादी, वहाँ तो दो-दो यमदूत-से मुछन्दर खड़े थे।

भजनलाल को देखते ही, उन्होंने फौजी सेल्यूट मारी और उसमें एक नाटा काला भुजंग-सा पहलवान खीसें निपोरकर बोला, "क्यों सरदार, माल मिला ?"

"मिलता कैसे नहीं रे तिलचट्टे !" दूसरे घिनौनी सूरत के पहलवान ने कार का द्वार खोल दिया, "आज तक क्या कभी हमारे सरदार खाली हाथ लौटे हैं ?"

नाटे व्यक्ति ने भीतर झाँककर विक्रम का हाथ पकड़ा तो उसने तनकर कहा, "खबरदार, जो मुझे हाथ लगाया !"

"अरे बाप रे बाप! एकदम गोखरू साँप का बच्चा है, गुरु!" नाटा व्यक्ति खुक-खुक कर हँसने लगा।

"अबे, हँसता क्या है, खींचकर पटक दे उसी कमरे में।" भजनलाल ने बड़े रोब से कहा, "देखता नहीं, पौ फटने को है। मुझे जाकर इसके बाप को चिट्ठी भी तो भिजवानी है। और करे स्मगलिंग, सारा काला धन भजनलान दो ही दिन में उगलवाकर रख देगा। पूरे साठ हजार माँग रहा हूँ। हफ्ते भर के अन्दर रुपया जमा नहीं किया तो इसी बूट से इस साँप के बच्चे का सर कुचलना होगा—समझे ?"

"समझ गया, सर!" उस नाटे बदसूरत यमदूत ने फिर एक सैल्यूट झाड़ी और फिर विक्रम को खींचकर बोला, "चलो बच्चू, अब हमारे साथ।" फिर दोनों जल्दी-जल्दी उसे लेकर जहाँ पहुँचे, वहाँ के अँधेरे में हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा था। कमरे में बेहद सीलन और बदबू का भभका उठ रहा था। न एक खिड़की थी, न एक रोशनदान। छत पर बने, एक नन्हे-से छेद पर एक जालीदार ढक्कन

लगा था।

"क्यों बे, कुछ खिलाया-पिलाया सरदार ने या भूखा ही है ?" मोटे नाटे व्यक्ति ने अपनी चौड़ी कमर पर हाथ रखकर पूछा। भूख से विकी की आँतें कुलबुला रही थीं, पर उसने रूखी आवाज़ में कहा, "नहीं, मुझे भूख नहीं है।"

"अच्छा तो बेटा, गुड नाइट!" उसने फिर अपनी उसी विचित्र हँसी के साथ द्वार बन्द कर दिया। बड़ी देर तक, विकी अँधेरे में, दीवारें टटोलता रहा था। कहीं एक छेद भी नहीं था। बड़ी देर बाद छत के उस जालीदार ढकने से, सूरज ने बड़ी कंजूसी से अपने प्रकाश की सात-आठ किरणें बिखेरीं, तो विक्रम एकटक उस ढकने को देखता रहा। छत इतनी नीची थी कि उस ढकने को वह लपकने पर ही छू सकता था। किन्तु किसी तरह ठोक-पीटकर ढकना निकाल भी दिया, तो उस छेद को वह बड़ा कैसे कर सकता था ?

बहुत देर बाद ढकना स्वयं ही खुल गया और एक डोरी में बँधी एक बड़ी-सी पुड़िया नीचे आयी। फिर एक बोतल में पानी उतर आया। फिर उसी छेद से, कल रात की वह परिचित मोटी आवाज गूँजी, "अबे, ओ साँप के बच्चे, खाना खाकर पानी पी ले। फिर थोड़ा सो ले। उसके बाद तुझे बाहर ले जाऊँगा। पर यहाँ तेरे बाप की कोठी के बाथ-रूम नहीं है। मेरे साथ लोटा लेकर दिशा-जंगल जाना होगा, तालाब के किनारे।"

ढकना फिर बन्द हो गया।

मन न होने पर भी विक्रम ने पुड़िया खोलकर मोटी-मोटी अधकच्ची नमकीन रोटियाँ खायीं। बीच-बीच में उसे अपना गुस्सा पानी की घूँट के साथ गले के नीचे उतारना पड़ा। भूखे पेट में खाना पहुँचते ही उसकी आँखें लग गयीं। सपने में सहसा दादी उसके सिरहाने खड़ी हो, उसके बालों में हाथ फेरने लगीं। अब वह रोता

जा रहा है और दादी उसे पुचकारती जा रही हैं, "मत रो मेरे बेटे, तू तो बड़ा बहादुर है। देख, आज जब तुझे वह नाटा यमदूत तालाब ले जाए तो छलांग लगाकर ऐसे पनडुब्बी वाली डुबकी लगाना—'ऐसे' कह सपने ही में दादी ने अपनी नाक मूँदकर उसे पनडुब्बी वाली डुबकी लेना सिखा दिया।

उसी पल उसकी आँखें खुलीं, तो देखा ठण्डा फर्श उसके आँसुओं से गीला हो गया था। भय से वह पसीना-पसीना हो रहा था कि खड़ाक से कुण्डी खड़की।

दिन के उजाले में और भी भयावह लगता, रात का नाटा पहलवान खड़ा मुस्करा रहा था। उसके हाथ में एक मोटी-सी रस्सी थी। 'हे भगवान!' विकी ने सोचा, 'अब क्या यह जल्लाद मुझे फाँसी पर लटकाएगा।'

"चल बे साँप के बच्चे, तुझे दिशा-जंगल ले चलूँ।" फिर उसकी कमर में मोटी रस्सी का फंदा डाल, वह अपने साथ ऐसे खींच ले गया, जैसे वह गाय का बछड़ा हो।

विक्रम उस घने बियावान जंगल को देखता चला जा रहा था। चारों ओर नीम, शीशम और गुड़हल के बड़े-बड़े पेड़ थे। कभी-कभी उन पेड़ों का सघन झुरमुट हटता और उजाला निकल आता। फिर दूसरा झुरमुट सिमट आता। "ले, यह रहा तालाब, तू फारिग हो ले। हम यहाँ बैठे हैं। उस्ताद ने तो कहा था, इस साँप के बच्चे को छोड़ना नहीं, चट से सरककर किसी बिल में घुस जाएगा, पर यहाँ अपन का पेट भी दुख रहा है। कल कबाब कुछ ज़्यादा टाप गए, बस रात ही से पेट चल रहा है। जब तू फारिग हो लेगा, तो रस्सी को झटकना, हम आ जाएँगे और देख, तालाब का पानी पी न लेना कहीं—बहुत गन्दा है। कहीं हैजा होकर तू ऊपर वाले के पास चला गया तो अपन की नौकरी खलास हो जाएगी, प्यारे !"



कमर की मोटी रस्सी की मजबूत गाँठ को सहलाता विक्रम तालाब के किनारे पहुँचा तो बारह साल के उस विक्रम का दिमाग एकदम छलांग लगाकर चौबीस साल का बन गया। उसे सपने में दादी की सिखायी पनडुब्बी वाली डुबकी याद आ गयी। उसने जेब में हाथ डालकर अपना चाकू निकाला। पिछली बार उसके मामा ने यह गुरखाली खुकरीनुमा तेज चाकू उसे काठमाण्डू से लाकर दिया था। मम्मी के बार-बार मना करने पर भी वह उसे दिन-रात छिपाए साथ रखता था। चट से उसने भारी रस्सी की गाँठ काटी और फिर धीरे-धीरे पानी में ऐसे उतरा जिससे 'छपाक' न हो। तैरने में तो वह अपनी स्कूल की टीम का कप्तान था ही। सपने में दादी पनडुब्बी वाली डुबकी और सिखा गयी थीं। देखते ही देखते, डुबकियों में ही वह न जाने कहाँ का कहाँ पहुँच गया था।

आने से पहले वह कमर की रस्सी को नीम के पेड़ के एक मोटे से तने से बाँध आया था। अब खूब खींच रहे होंगे पेड़ को नाटे पहलवान! उसे हँसी आयी और उसने सिर बाहर निकाला तो

देखा वह किसी घनी बस्ती के किनारे आ लगा है। हाथ-पैर टूटे जा रहे थे। लगता था वह मीलों तैर गया है।

धीरे-धीरे वह डोंगी-सा तैरता किनारे जा लगा। एक साँवली-सी औरत, किनारे बैठी घड़ा माँज रही थी। उसे देखते ही चौंक गयी, 'दैया रे, केकर बिटवा है रे!'' उसने पूछा। विक्रम को लगा, उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा रहा है। यदि वह औरत अपना घड़ा किनारे पटक, उसे गोद में न उठा लेती तो वह निश्चय ही फिर पानी में डूब जाता।

इसके बाद जब उसे होश आया तो वह एक साफ़-सुथरी झोंपड़ी में, चटाई पर लेटा था। वही साँवली औरत उसके सिरहाने बैठी पंखा झल रही थी। उसकी आँखें खुलीं तो वह ख़ुशी से चीख उठी, ''ओ दुलरिया के बाबू, तनी देखो आय के, आँखें खोल रिहिस...'' फिर घुटनों तक धोती समेटे, दुलरिया के बाबू भी उसके सिर पर हाथ फेरने लगा, ''अरी दुलरिया, दूध गरमा ला बिटिया बताशा डारि कै।''

गर्म-गर्म मीठा दूध विक्रम के गले के नीचे उतरा और उसे सब कुछ याद आ गया।

''कउन गाँव केर हो, बिटवा? का नाव है बाप का।''

उस साँवली औरत की आवाज़ उसे अपनी दीदी की आवाज़ से मीठी लगी।

''सुस्ताय लेओ बचुआ,'' दुलरिया के बाबू ने शायद भाँप लिया था कि वह चाहने पर भी कुछ नहीं कह पा रहा है।

फिर धीरे-धीरे उसने सब बता दिया।

''सुन री दुलरिया,'' दुलरिया के बाबू ने, उस गदबदी गोल-मटोल प्यारी-सी लड़की का हाथ पकड़कर अपने पास खींचकर कहा, ''खबरदार, जो किसी से कुछ कहा, भजनलाल सरऊ सुनी तो सबकी बोटी-बोटी बहायै का इन्तजाम करी। कसाई है कसाई। बचुआ, तुम

चुपचाप इहाँ-दुई-चार दिन पड़े रहो, हम टरक में गन्ना पहुँचाने शहर जाव तो तोहका संगै लई जाव।"

चार-पाँच दिन नहीं, पूरे आठ दिन मौज-मस्ती में कटे थे विक्रम के। ताज़ा-ताज़ा मट्ठा पीता, बाजरे की रोटी पर ताजे मक्खन की डली और नया गुड़ धरकर फकाफक खाता। उधर दुलरिया ताजा पिले गन्ने का लोटा भर रस ले आती। फिर दोनों पिछवाड़े के आँगन में दिन-भर गिल्ली-डण्डा खेलते।

विक्रम को एक बार भी घर की याद नहीं आयी। बीच-बीच में एक दादी के लिए मन न जाने कैसा हो जाता था। निश्चय ही उसके स्कूल से गायब होने की खबर पा बेचारी भूखी-प्यासी रो रही होगी। मम्मी को तो खूब सबक मिल गया होगा। अब और घूमें और ताश खेलें। दुलरिया की अम्मा को वह कहता था, चाची। वह हमेशा हँसती रहती। सुबह उसके उठने से भी पहले खेत जाती, गैया दुहती, मट्ठा बिलोती और फिर गाना गा-गाकर चक्की चलाती। गाने भी कैसे-कैसे मज़ेदार—

'हमका बिठाव रेलगाड़ी मा बबुआ,
हमका बिठाव धुआँगाड़ी मा बबुआ!'

"क्यों चाची, तुम क्या कभी रेलगाड़ी में नहीं बैठी हो ?" एक दिन विकी ने पूछ लिया।

"नहीं बचुआ, हम तो मोटरिया में भी नहीं बैठी।"

"अच्छी चाची, एक बार घर पहुँच जाऊँ। फिर देखना तुम्हें अपनी मोटर में कैसी-कैसी सैर कराता हूँ। और सुन री दुलरिया, तुझे क्या-क्या चाहिए, बोल..."

दुलरिया चट से अपनी फ़रमाइश पेश कर देती, "भैया दाने की पट्टी, लिखने वाली कलम, रंगीन चश्मा और लाल रेशमी रूमाल, प्लास्टिक की टोकरी..."

"हाँ-हाँ, सब ला दूँगा, पर दुलरिया, अपनी गिल्ली मुझे घर ले जाने देगी ना ?"

"नहीं भैया, गिल्ली हम ना देव।" वह गिल्ली दुलरिया को प्राणों से प्यारी थी। पर जिस रात, विक्रम को काले कम्बल में ओढ़ा-छिपा, महतो अपनी गन्नों से लदी ट्रक में छिपाकर उसके घर ले जाने लगा, दुलरिया चुपचाप आकर एक गन्दे चीथड़े में लिपटी वह गिल्ली उसे थमा गई थी।

फिर विक्रम ही महतो को रास्ता बताता घर पहुँचा तो रात हो गई थी। गन्नों से लदी ट्रक द्वार पर ही रोक, महतो नीचे उतरा। दूर से ही उसे देख सन्तरी ने फटकार दिया, "अबे ओ रे गँवारिया, कौन है तू ? यहाँ ट्रक खड़ा क्यों किया? जानता नहीं, यह मल्होत्रा साहब की कोठी है ?"

अब भीतर बैठे विक्रम से महतो का अपमान नहीं सहा गया। वह नीचे उतरा। पहले सन्तरी ने नहीं पहचाना, फिर तो पहचानते ही वह वहीं से चीखने लगा, "हुजूर, नीचे आएँ, विकी बाबा आ गए! विकी बाबा आ गए!" देखते ही देखते भीड़ लग गई। लाठी टेकती दादी लाठी दूर फेंक उसे ऐसे चूमने-चाटने लगीं जैसे गाय अपने खो गए बछड़े को चाटती है। उधर मम्मी बौरा कर लिपट गईं। डैडी तो सबके सामने सिसकने लगे। एक पल को विकी भूल गया कि महतो बाहर ही खड़ा है। फिर वह भागकर उसे हाथ पकड़ खींच लाया।

"ये कौन है, बेटा ?" मम्मी ने पूछा।

"मेरे बाबू!" विकी ने महतो का हाथ खींच कुरसी पर बिठा दिया। पूरी कहानी सुनते ही डैडी ने खटाखट फोन दागे। पुलिस की गाड़ियाँ तीर-सी चलीं और दूसरे ही दिन भजनलाल, शमशेर और बशीर बँधकर हवालात में बन्द हो गए।

कितना बदल गया था सब कुछ। मम्मी अब उसे एक पल को भी नहीं छोड़ती थीं। डैडी बार-बार पीठ थपथपाते थे। दादी ने तो ऐसी धूमधाम से सत्यनारायण की कथा करवाई कि तीन-तीन हलवाई पूड़ी-पकवान बनाते-बनाते थक गए। महतो सपरिवार आए और दादी ने, मम्मी ने चाची को न जाने कितनी साड़ियाँ ले दीं और कितने गहने। दुलरिया को उसकी सब चीज़ें दिलवाकर भी विक्रम को सन्तोष नहीं हुआ, "डैडी, चाचा को क्या देंगे आप ?" उसने पूछा।

"हमने सोचा लिया है, बेटा! हम तुम्हारे चाचा को जो उपहार दे रहे हैं वह पहले ही उनके गाँव पहुँच चुका है।" डैडी ने कहा।

"क्या डैडी ?"

"ट्रैक्टर !"

सच, डैडी की पसन्द हमेशा बेजोड़ रहती थी। सबसे ज्यादा खुशी तो विकी को मम्मी के बदल जाने से हुई थी। न वह अब होंठों में रंग लगाती थीं, न गालों में; न आँखों के नीचे ही वह हरा-हरा लेप पोतती थीं।

जब महतो, चाची और दुलरिया चले गए तो विकी बहुत उदास हुआ। फिर उसे याद आया कि उसने तो चाची का चक्की वाला गाना टेप किया है। चट से टेप चालू कर वह गाना सुनने लगा, तो उसे लगा चाची कहीं गई नहीं, वहीं बैठी चक्की पीसती गा रही है—

हमका बिठाव रेलगाड़ी मा बबुआ,
हमका बिठाव धुँआगाड़ी मा बबुआ!

मामा गरजो

तराई के एक घने जंगल में एक बहुत ही सन्त-स्वभाव का शेर रहता था। देखने में जितना भयावह और कठोर था, उसका हृदय उतना ही कोमल और दयालु था। जंगलभर के बच्चे, उसकी सुनहली पीठ पर कूद-कूद ऊधम मचाते, वह न कभी गुर्राता, न डराता।

एक दिन तो, एक मुँहफट कौवे ने कह भी दिया, "महाराज, ऐसी कायरता आपको शोभा नहीं देती। हम तो गाय-भैंसों की पीठ पर भी कभी बैठ जाते हैं तो वे पूँछ पटक, सींग हिला, हमें भगा देते हैं, और एक आप हैं, पूरे जंगल के एकछत्र सम्राट, पर जिस तीन कौड़ी के जानवर को देखो, वही आपकी पीठ पर सवार। कोई मूँछें खींच रहा है, कोई पूँछ।"

शेर ने मुस्कराकर कहा, "भाई, विधाता ने इतना चिकना, मुलायम शरीर दिया है, अगर दो घड़ी बच्चे, उस शरीर पर बैठकर, कूद भी लिए तो कौन मेरी देह छिल जाएगी। फिर, तुम तो जानते ही हो, विधाता ने हमें सन्तान-सुख से वंचित किया है, दूसरों के बच्चों का सुख ही क्यों न भोग लें।"

सन्त शेर की आँखें गीली हो आईं। असल में शेर ऐसा था नहीं। कभी उसकी दिल दहला देने वाली दहाड़ से दूर-दूर के जंगल

के पशु-पक्षी सहमकर झाड़ियों में दुबक जाते थे। आस-पास के गाँव वाले उसके आतंक से साँझ को ही, द्वार बन्द कर घर में छिप जाते थे। जहाँ अन्य शेर अँधेरा होने पर शिकार के लिए निकलते, वहाँ वह निर्भय होकर, दिन-दहाड़े ही घास काटने या लकड़ी बीनने आई बिलबिलाती घसियारिनों को घसीट, खड़ा-खड़ा पान-सा चबा जाता। उसकी शेरनी भी उसी की तरह सुन्दर और निडर थी। एक दिन, वे दोनों शिकार के लिए बड़ी दूर निकल गए, जब लौटे तब अँधेरा हो गया था। प्यासी शेरनी पास ही के तालाब में पानी पीने झुकी ही थी कि किसी पेड़ पर मचान लगाए, अंग्रेज़ शिकारी ने अपनी बन्दूक दाग दी—'धाँय-धाँय।'

देखते ही देखते फिर उसने पास खड़े शेर पर भी अपना निशाना साधा, किन्तु वह फुर्ती से घाटी में छलाँग लगाकर अदृश्य हो गया। जब लौटा तब हृदयहीन शिकारी, उसकी प्राणप्रिया की देह को भी कार में लादकर ले जा चुका था।

उसी दिन से वह नरभक्षी खूँख्वार शेर संसार-त्यागी, फलाहारी सन्त बन गया था। न कहीं घूमता, न दहाड़ता; न किसी से बोलता, न हँसता। स्वेच्छा से ही राज-सिंहासन त्याग, उसने जंगल का राज-काज अपने भतीजे को सौंप दिया और दिन-रात माला जपने लगा।

कई बार चूहे के शैतान बच्चे, उसकी पूँछ कुतर जाते। गधे के सिर चढ़े बिगड़ैल बेटे ने तो एक दिन हद ही कर दी। ठीक सीने पर चढ़, उसे दुलत्ती झाड़ भागने लगा था कि सन्त शेर ने उसको खुद पकड़ लिया और सहलाकर पूछा, "राम-राम! चोट तो नहीं लगी बेटा? नरमांस छोड़ने पर भी मेरा सीना वैसा ही चट्टान-सा है। असल में कितनी ही घसियारिनों के चाँदी के कड़े, हँसली, हमेल सीने ही में अटक कर रह गए हैं, वही तुम्हें रोड़े-पत्थरों से

लगे होंगे, क्यों ?"

गधा खिसियाकर भाग गया था। एक लोमड़ी से उस सन्त शेर की गहरी मित्रता थी। कभी आकर वह उसकी सुनहली मूंछों से खेलती, कभी उसकी शिथिल पूँछ का जूड़ा बनाती, कभी सुनहली अयाल की दो चोटियाँ गूँथकर लटका देती। शेर भी उस चंचल लोमड़ी को बहुत प्यार करता था। एक दिन वह आकर मचलने लगी, "मामा, शहर में दशहरे का मेला लगा है, हमें ले चलो।"

शेर ने हँसकर कहा, "पगली कहीं की, मेले में भला हम पशु-पक्षी जा सकते हैं ? तू लुक-छिपकर देख भी लेगी, पर मुझे देखकर तो भगदड़ मच जाएगी।"

"आपको कौन नहीं जानता मामा, सब तो जानते हैं। इतने वर्षों में, एक भी हड्डी क्या आपके दाँतों से बजी है ?"

"नहीं बच्ची, उजड़ गई तो फिर भी दिल्ली। शेर शेर ही है और फिर मैं तो खुला शेर हूँ। चिड़ियाघर के पिंजरों में बन्द शेरों की गर्जना भी अभागे मनुष्यों का दिल दहला देती है। मेरा मौसेरा भाई तो लखनऊ के बनारसी बाग के पिंजड़े में, पिछले पाँच सालों से बन्द है। कह रहा था कि एक दिन एक बुढ़ऊ अपने नाती-पोतों को चिड़ियाघर दिखाने लाए। अपना पोपला मुँह हिला-हिलाकर, कभी बच्चों को मेरे भाई की मूँछें दिखाते, कभी पूँछ। बस, उसको ताव आ गया। कहाँ शहँशाही वंश का सूरमा और कहाँ उसकी मूँछ-पूँछ की खिल्ली उड़ाई जा रही थी। जो गरजा, जो गरजा कि बुढ़ऊ को दिल का दौरा पड़ा और वहीं चित्त हो गए। सो बेटी, हमें मेले-ठेले में किसी ने छेड़ दिया तो हम भी क्या बिना गरजे रह पाएँगे? जंगल के बच्चों की बात दूसरी है, पर आदमियों के बच्चे बड़े उत्पाती होते हैं, भानजी। कोई पूँछ खींचेगा, कोई मूँछ।"

"नहीं मामा, जैसे भी हो, आपको हमें ले ही जाना होगा।" आखिर हारकर दिन डूबे शेर अपनी उस मुँहलगी भानजी को पीठ पर चढ़ा, मेला दिखाने ले चला।

जब वे मेले में पहुँचे तो अँधेरा हो चुका था। रंग-बिरंगी साड़ी, चादर ओढ़े, लच्छे झाँझने झमकाती गाँव की स्त्रियाँ, गोद में बच्चा लिए ताँगों-इक्कों पर गाती-बजाती, घर लौटने लगी थीं। कहीं पिपरी बज रही थी, कहीं सीटी। कोई गुब्बारा फुला रहा था, कोई फटाफट गुब्बारा फोड़ रहा था और कोई चीं-चीं कर गुब्बारे की मौत पर रो रहा था। कहीं मिठाइयों की दूकानों पर जलेबी-लड्डुओं के थाल सजे थे। कहीं दुकानों पर रेशमी फीते, रंगीन मनकों की मालाएँ लटकी थीं। खिलौनों की दूकानों की न्यारी ही छटा थी। कहीं प्लास्टिक की लाल-पीली टोकरियाँ, कहीं रंग-बिरंगी बालियाँ और कहीं सजा-धजा बबुआ। एक ओर एक तम्बू के बाहर, पेट में कपड़ा ठूँसे, चेहरे को रंग-विरंगी बुँदकियों से सजाए, चिबिल्ला जोकर, मोटा पेट बजा-बजाकर चीख रहा था, "आइए, आइए, दो सिर वाली लड़की देखिए—सिर्फ़ दस पैसे में!"

शेर ने लोमड़ी को मेले की भीड़ में उतार दिया और खुद एक झाड़ी में छिपकर बैठ गया। असल में तम्बू के रंगीन शामियाने और चिबल्ले जोकर को देखकर उसे अपनी प्यारी शेरनी की याद व्याकुल कर गई थी। ऐस ही रंगीन तम्बू के साए में उसने अपनी सुन्दरी शेरनी को पहली बार देखा था और जब वह सर्कस के पिंजरे से दहाड़ती, मंच पर खड़ी हुई तो शेर का धड़कता हृदय मुँह को आ गया था। क्या मुट्ठी-भर की कमर थी और कैसा सुनहला रंग! और फिर तो वह आग के दहकते छल्ले से, अपनी पतली कमर निकालती कूदी तो सन्त शेर उसके प्रेम में आकण्ठ डूब गया था। इधर सन्त अपनी शेरनी की याद में आँसू बहा रहा

था, उधर लोमड़ी इधर-उधर घूमती, उदास मुँह लटकाए सतृष्ण दृष्टि से मिठाई, खिलौनों और कपड़ों की दुकानों को देख रही थी। हाय, हाय कैसी-कैसी चीज़ें थीं, पर खरीदे कैसे !

गाँठ में तो, एक छदम्मी भी नहीं थी। देखते-देखते मेला उठ गया और भीड़ छंट गई, तब अँधेरा घना होते देखकर शेर भी बाहर निकल आया।

लोमड़ी को ढूँढ़ता वह उसके कान के पास आकर फुसफुसाया, "क्यों भानजी, घर नहीं चलेगी क्या ?"

"हाय मामा, न कुछ खाया, न खरीदा। मैं तो घर से यह खाली थैला लेकर चली थी और जंगल के राजा मेरे साथ, फिर भी खाली ही थैला लेकर वापस जा रही हूँ।"

"पगली कहीं की। थैला लाने से क्या होता है। यह तो मनुष्य हैं मनुष्य, यहाँ तो दुकानदार अपने सगे बेटे को भी बिना पैसे के सौदा नहीं तोलता।"

"हाय मेरे अच्छे मामा, थोड़ी-सी मिठाई तो दिलवा ही दो। घर चलकर हम दोनों साथ बैठकर खाएँगे। आप भी तो सुबह से भूखे हैं।"

शेर मुसकराया। बोला, "चल तू भी क्या कहेगी कि कैसे दरिद्र मामा के साथ मेला देखने आई। चल, घुस जा मिठाई की दुकान में, मैं यहीं छिपकर बैठा हूँ। जो मन आए, खरीद कर झोला भर लेना, दुकानदार पैसे माँगे तो मुझे पुकार कर कहना, 'मामा गरजो'—बस, इतना कहकर, तू बाहर निकल आना। मेरी गर्जना ही उसका सब हिसाब चुकता कर देगी।"

लोमड़ी उछलती-कूदती भीतर गई, "ऐ जी, दुकानदार !" उसने बड़ी अकड़ से कहा, "दो किलो रसगुल्ले रख दो, दो किलो गाजर का हलुवा, एक किलो नमकीन काजू और एक किलो खस्ता

और हाँ, मीठी चटनी भी रखना, खट्टी भी।''

पहले तो दुकानदार चौंका, ऐसा ग्राहक तो आज तक उसकी दुकान में कभी नहीं आया। फिर उसने चटपट सामान तौल दिया, "लीजिए बहन जी, एक सौ बीस रुपए सामान के और दो रुपए अस्सी पैसे टैक्स!"

"यह टैक्स कौन-सी मिठाई है जी, यह तौलने को तो हमने नहीं कहा।"

दुकानदार हँसा, "लगता है, आप पहली बार मिठाई खरीद रही हैं। मिठाई तो मिठाई, यहाँ तो अब कफन खरीदने पर भी टैक्स चुकाना होता है, बहन जी ! लाइए रुपए !"

लोमड़ी ने डिब्बे थामे और कहा, "मामा गरजो !"

बस, फिर तो मामा गरजे और मिठाई के थाल लड्डू-जलेबियों सहित ऐसे काँपने लगे जैसे भूकम्प आ गया हो। दुकानदार घबरा गया। नौकर थरथराकर नीचे गिर गया और उसके हाथ की तराज़ू ताज बनी सिर पर अटक गई। लोमड़ी का तो मारे हँसी के बुरा हाल हो गया। फिर वह बड़ी फुर्ती से हाथ में डिब्बे सम्भालती चलते-चलते चार लड्डू फाँकती हवा-सी निकल गई।

शेर ने हँसकर कहा, "बस भर गया न मन? चल, चढ़ जा पीठ पर और चल घर।"

"नहीं मामा!" लोमड़ी फिर मचली, "अभी तो हमें साड़ियाँ दिलवा दो! हाय, कैसी-कैसी सुन्दर साड़ियाँ हैं उस दुकान पर !"

"अरी, साड़ी किस कमर पर बाँधेगी? जिसका पेशा उसी को साजे...कैसी लगेगी साड़ी में, ज़रा सोच तो !"

"नहीं मामा, दिलवा दो मामा !"

और फिर वह लोभी लोमड़ी साड़ी की दुकान में घुस गई। लाल, पीली, नीली एक साथ कई साड़ियाँ खरीद उसने पैकेट थामा



ो दुकानदार ने बिल पेश किया, "चार सौ रुपए साड़ियों के और
ूरे पाँच रुपए सेल्स-टैक्स!"

चतुर लोमड़ी मुस्कराई, "भाई साहब, साड़ियों के दाम तो बाद में अदा करूँगी, पहले अपने प्यारे मामा से कह दूँ कि आपका सेल्स-टैक्स चुका दें !"

"मामा गरजो!" उसने इठलाकर कहा।

और इस बार उसके प्यारे मामा ने गर्जना के साथ-साथ अपना चन्द्र मुख भी द्वार से चमका दिया।

मोटा दुकानदार भय से थर-थर काँपने लगा। दोनों नौकर बेहोश होकर उसकी गोद में गिर पड़े। ऊपर से पाँच-छह मोटे-मोटे रेशमी थान लुढ़ककर उसके सिर पर गिरे और कन्धों पर ऐसे खुल-खुलकर बिखर गए जैसे शिवजी के कन्धों पर भगीरथ की गंगा जी गिरी थीं। छिछोरी लोमड़ी ने वहीं पर रखा कपड़ा नापने का गज उसे थमाकर हँसते हुए कहा, "लीजिए श्रीमान, अपने ग्राहकों का कपड़ा ज़रा ईमानदारी से नापिएगा और भूलकर भी मनमाना सेल्स-टैक्स मत माँगिएगा, समझे ?"

"अब तो घर चलो भानजी, बहुत मज़ाक हो गया, भूख भी लगी है," शेर ने कहा।

पर लोमड़ी का लोभ बढ़ता ही जा रहा था। उसने बेचारे सीधे-सादे मामा को, गरजा-गरजा कर हाथ-भर चूड़ियाँ पहनी, पूँछ पर रंगीन, रेशमी फीते बाँधे, फिर मघई पानों के पूरे सत्ताईस बीड़े, डिब्बा-भर खुशबूदार ज़र्दा और सुवासित सुपारी से थैला भर, मामा की पीछ पर चढ़कर बोली, "अब चलो घर, अब वहीं पहुँचकर, मिठाइयों का भोग लगाएँगे।"

"अरी, तब तक एक-आध मिठाई तो निकाल!" शेर को सचमुच ही भूख लग आई थी। पर चालाक लोमड़ी अपने उस लुभावने बोझ की एक छंटकी भी कम नहीं करना चाह रही थी।

"नहीं मामा, सब रस हाथों में लथपथ सन जाएगा। और एक बूँद भी आपकी चिकनी देह पर टपकी, तो आप मुझ पर ही बिगड़ेंगे हाँ !"

उधर मामा की पीठ पर बैठी चालाक भानजी, धीरे-धीरे थैले में हाथ डाल कभी गप्प से रसगुल्ले मुँह में धरती, कभी गाजर का हलुवा।

"सुना है बेटी, मनुष्य मिठाई बड़ी गजब की बनाते हैं। एक बार जब तेरी मामी सर्कस की नौकरी करती थी, जब अपनी पहली तनख़्वाह से मेरे लिए हण्डिया भर रसगुल्ले लाई थी। आहा, क्या स्वाद था, भानजी! वैसे तो मैंने नवजात मानवशिशु का चिकना माँस भी खाया है और कड़ियल जवान का भी, ऐसी-ऐसी सुन्दर घसियारिनें चबाई हैं भानजी, कि तेरी मामी का डर न होता तो शायद..." कहकर मामा चुप हो गए।

"तो क्या मामा? कहो ना, चुप क्यों हो गए?" लोमड़ी ने जल्दी-जल्दी गाजर का हलुवा निगलकर पूछा।

"अरी, वह न होती तो मैं क्या उन सुन्दरी घसियारिनों को ऐसे चबा जाता, अपनी मांद में पटरानी बनाकर न रखता?" वह फिर ज़ोर से हँसा।

"तो क्या रसगुल्ला, उन सुन्दरी पहाड़ी पधानियों के माँस से भी मीठा होता है मामा?" लोमड़ी एक साथ तीन रसगुल्ले निगल, अनजान भोली बनी पूछने लगी।

"अरी, घर चलकर देखना। मेरी ननिहाल है सुन्दरवन में। नानी बेचारी बुलाती-बुलाती मर गई कि 'बेटा आकर जी भर के रसगुल्ले तो खा जा। पर तू तो तराई भाभर में पड़ा है, वहाँ तो हमारे वंश का शत्रु कौर्बेट साहब भी रहता है। दिन-रात तेरे लिए प्राण काँपते हैं।" पर मैंने कहलवाया कि नानी, तुम्हारा नाती अब रसगुल्ले नहीं खाता। वह बन्दूक सहित फिरंगी शिकारियों को निगल जाता है। पर देखना भानजी, क्या अन्त हुआ हमारी गौरवमयी परम्परा का। आज हमारे लिए नकली पार्क बनाए जाते हैं, पिंजड़ों में बन्द कर हमें चिड़ियाघर का नुमाइशी जीव बनाया जाता है। बेहोश करने वाली बन्दूकों से हमें दाग, छल-बल से बन्दी बनाया जाता है। हमारा शत्रु मानव, अब अपने बहादुर पूर्वजों की भाँति सामने आकर हमसे नहीं लड़ता, पीठ पीछे हमला करता है। मनुष्य में अब न वह शौर्य रहा, न पराक्रम। और इसी से न अब हमारी मूँछें सतर हैं, न दुम तुर्री, न आँखें लाल। बड़ा दुख होता है भानजी, जब आज के जवानों की झुकी मूँछें देखता हूँ। सुना यही नया फैशन है। अब तू ही बता, जब दुश्मन ही अपनी मूँछें झुकाए हमारे सामने खड़ा हो जाएगा, तब हम ही किसके लिए अपनी मूँछें ऐंठें।

"हाय मामा, आपकी बातें सुनकर तो मज़ा आ गया, सब भूख-प्यास भूल गई और बातों ही बातों में घर भी पहुँच गए।"

फुर्ती से हाथ का थैला सम्भालती लोमड़ी चट से नीचे उतर गई।

शेर ने संदिग्ध-दृष्टि से, लोमड़ी के फूले पेट और चिपके थैले को देखा।

"अच्छा भानजी, निकाल थैली, आधी मिठाई तेरी, आधी मेरी।"

"वाह मामा, इस थैली में आपका हिस्सा कैसा? यह तो मैंने घूम-फिर कर जुटाई है। आप तो दूकान के भीतर भी नहीं आए।" दूकानदार अगर मुझे बाँध-बूँधकर रख देते तो आपका क्या बिगड़ता? आप तो बाहर से ही फूट लेते।

वह फिर हँसकर, थैला लिए ही उचककर पेड़ पर बैठ गई।

शेर मारे गुस्से से लाल पड़ गया। उसकी पूँछ के फूलकर रोंए खड़े हो गए। आँखों में खून उतर आया और मूँछें सेई के काँटों-सी सतर हो गईं।

"अच्छा भानजी, आखिर उतर आई ना औकात पर। ठीक है तब, सुन!" यह कह, उसने स्वयं ही चीखकर अपने को आदेश दिया, "मामा गरजो !"

और बाप रे बाप! गरज थी कि सहस्रों बादल, एक साथ गरज पड़े। धड़ाधड़ पेड़ काँपते-थरथराते दुहरे हो गए। नदी की लहरें, ज्वार-भाटे-सी, छपाक-छपाक करने लगीं। घोंसलों में चिड़ियों के अण्डे फटाफट टूट गए, चूज़े निकल चीं-चीं करने लगे। बिलों से साँप बाहर निकल आए और कोटरों से पक्षी। काँपती-थरथराती लोमड़ी, थैले सहित नीचे गिरी—फत्त! जैसे बन्दूक-सी दगी, मरी बत्तख हो।

शेर मामा ने, लपककर थैला छीना और एक घूँसा मारा तो उसके पेट में से सारा गाजर का हलुवा और रसगुल्ले बलबलाकर

बाहर निकल आए।

"मूर्ख लोभी लोमड़ी," मामा ने कहा, "तूने क्या समझा, शेर सन्त बन गया तो गरज भी नहीं सकता? अरी बावली, तुझ-जैसे लोभी जीवों को ठीक करने के लिए कभी-कभी सन्त को भी गरजना पड़ता है, समझी? याद रखना छोकरी, बड़ों से मैत्री करने का यह मतलब नहीं कि अपनी औकात ही भुला दो। बड़े आदमी अगर पीठ पर चढ़ा लेते हैं, तो चढ़ने वाले की नीच हरकतें देख, उसे उठाकर नीचे पटकना भी जानते हैं। यह घूँसा तुझे हमेशा याद दिलाएगा छोकरी कि शेर शेर ही कहलाएगा और लोमड़ी लोमड़ी।"

□□□

बाल-साहित्य

देश-विदेश की सचित्र लोककथाएं

पड़ोसी देशों की लोककथाएं
पंजाब की लोककथाएं
हरियाणा की लोककथाएं (पुरस्कृत)
हिमाचल की लोककथाएं
राजस्थान की लोककथाएं
मध्यप्रदेश की लोककथाएं
उत्तर प्रदेश की लोककथाएं
जापान की लोककथाएं
अफ्रीका की लोककथाएं
गुजरात की लोककथाएं
बिहार की लोककथाएं
असम की लोककथाएं
बंगाल की लोककथाएं (पुरस्कृत)
केरल की लोककथाएं

प्रेमचन्द की सरल, सचित्र बाल कहानियां

बूढ़ी काकी
बड़े घर की बेटी
सुजान भगत
परीक्षा
शतरंज के खिलाड़ी
दो बैलों की कथा
मां की ममता
शिकारी राजकुमार
गुल्ली-डण्डा
रानी सारंधा
नमक का दरोग़ा
रामलीला
पंच परमेश्वर
मन्दिर
ईद का त्यौहार
सब से बड़ा तीर्थ
कुत्ते की कहानी
मेरी कहानी
रामकथा
जंगल की कहानियां

रवीन्द्रनाथ टैगोर की सरल बाल-कहानियां

भोला राजा
काबुलीवाला
पारसमणि
मास्टरजी
तोते की कहानी
राजा का न्याय

ISBN 81-7028-473-2

राजपाल